ईकाई – 4

प्रस्तावना (Introduction)

राजनीतिक चिंतन के इतिहास में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा अधिकारों को नये–नये आयाम प्रदान किए गए। वहीं दूसरी तरफ व्यक्तिवादी विचारधारा ने पूंजीवाद को अपने चरम पर पहुंचाया। जिसके परिणामस्वरूप जहां एक और धनिक तथा पूंजीपति वर्ग का उदय हुआ वहीं दूसरी और आर्थिक शोषण तथा असमानता जैसी सामाजिक समस्याओं ने भी जन्म लिया। श्रमिक वर्ग को इन्हीं समस्याओं से मुक्ति दिलाने के लिए राजनीतिक चिंतन के इतिहास में एक ऐसे महान क्रान्तिकारी का उदय हुआ, जिन्होंने अपने राजनीतिक चिन्तन का आधार भी इन्हीं समस्याओं को बनाया। इस ईकाई में हम उस महान क्रान्तिकारी विचार कार्ल मार्क्स के राजनीतिक विचारों का अध्ययन करेगें। जिन्होंने आज तक विश्व इतिहास को सबसे ज्यादा प्रभावित किया है।

उद्देश्य (Objective)

1. कार्ल मार्क्स के राजनीतिक विचारों का अध्ययन
2. मार्क्स द्वारा प्रतिपादित इतिहास के निर्माण के विभिन्न चरणों को समझना।
3. भौतिक परिस्थितियों का सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।

अध्याय – 7

कार्ल मार्क्स (Karl Marx)

7.1 प्रस्तावना (Introduction).

20वीं शताब्दी में जिस विचारक के विचारों ने दुनिया को आलोकित किया, उतना संभवतः और किसी विचारक के चिन्तन ने नहीं किया, वह कार्ल मार्क्स ही था। पश्चिमी दुनिया में ईसाईयत तथा इस्लाम के बाद 'साम्यवाद' एक ऐसे आन्दोलन के रूप में सामने आया जिसने समूचे संसार में खलबली मचा दी, बुद्धिजीवी तथा शासक वर्ग को ही नहीं, बल्कि आमजन समुदाय को भी झकझोर दिया। मॉर्क्स के विचारों ने 'मॉर्क्सवाद जैसा एक विचारात्मक व्यक्तित्व खडा कर दिया जो उसकी मृत्यु के इतने वर्षों के बाद भी जीवित है। राजनीतिक चिन्तन के इहिास में कार्ल मार्क्स को ''वैज्ञानिक समाजवाद'' के जनक के रूप में याद किया जाता है। लुई वाशरमेन के अनुसार, 'उसने समाजवाद को एक षड़यंत्र के रूप में पाया तथा उसे एक आन्दोलन के रूप में छोड़ा'। मार्क्स ही ऐसा विचारक था जिसने सामाजिक विसा का एक वैज्ञानिक तथा क्रमिक अध्ययन किया। मार्क्स से पूर्व भी दार्शनिकों ने विश्व की व्याख्या की है, परन्तु मार्क्स ने विश्व को बदलने का प्रयास किया है। मार्क्स एक ऐसा विचारक है जिसने इतिहास की व्याख्या समाज के वंचित वर्ग के दृष्टिकोण से करने का प्रयास किया है। उसने आर्थिक शोषण तथा आर्थिक तत्वों के कारण व्याप्त विषमताओं की ही सभी समाजों में परिवर्तन का आधार माना। मार्क्स के विचारों को किसी एक देश, काल, समाज तक सीमित रखना असंभव है।

7.2 उद्देश्य (Objectives)–

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होगें –

- मार्क्स के जीवन वृत्त को जानने में
- मार्क्स के विचारों का स्रोत जानने में
- मार्क्स के द्वारा की गई इतिहास की व्याख्या को समझने में
- मार्क्स के विचारों से पड़ने वाले प्रभावों को समझने में

- मार्क्स द्वारा दिए गए वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को समझने में

7.3 जीवन परिचय (Life Sketch)

साम्यावादी सन्त कार्ल मार्क्स का जन्म 8 मई, 1818 को जर्मनी के एक छोटे से नगर ट्रीवीज में हुआ। मार्क्स का प्रारम्भिक पालन – पोषण यहूदी संस्कारों के तहत हुआ। उसके पिता हरशेल मार्क्स एक वकील थे और उसकी मां हैनरीटा प्रेसबर्ग एक घरेलू कामकाजी महिला थी। 1824 में मार्क्स परिवार ने यहूदी धर्म के स्थान पर ईसाई धर्म अपना लिया। इस घटना ने बालक कार्ल मार्क्स के मानस पटल को इतना अत्याधिक प्रभावित कर दिया कि वह अपने सम्पूर्ण जीवन में यहूदियों का कटु–आलोचक बना रहा, इसी कारण उसने धर्म को अफीम कहा। मार्क्स बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि का स्वामी था, उसके मन में गरीब लोगों के लिए गहरा प्रेम था। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा उदारवादी विचारक वैस्टफेलन के मार्ग – दर्शन में हुई। इसके बाद उच्च शिक्षा के लिए उसे 1835 में बॉन विश्वविद्यालय में भेजा गया लेकिन यहां पर उसने कानून की शिक्षा ग्रहण करने की बजाय इतिहास और दर्शन शास्त्र का अध्ययन शुरू हुआ। इसके एक वर्ष बाद ही मार्क्स ने बर्लिन विश्वविद्यालय में इतिहास व दर्शन पर ही अपना सम्पूर्ण ध्यान लगा दिया। यहां पर उसने हीगल के द्वन्द्ववादी चिन्तन का अध्ययन किया। 1841 में उसने जेना विश्वविद्यालय से 'डेमोक्रिटस' और एपिक्यूरस के प्राकृतिक दर्शन में भेद (The Differences between the Natural Philosophy of Democritus and Epicurus) पर निबन्ध लिखकर अपनी डॉक्टरेट (Ph.D) की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद उसे अध्यापक बनने का निश्चय किया। परन्तु उसके हमदर्द फ्यूरबेक और ब्रनीब्यूर को सरकार विरोधी नीतियों के कारण जर्मनी से निष्कासित कर दिया तो उससे उसका अध्यापक बनने का स्वपन चकानाचूर हो गया। इसके बाद उसने अक्तूबर, 1842 में अपनी आजीविका चलाने के लिए 'रीनचे जीतूंग' पत्र में सम्पादक के तौर पर कार्य किया। यहां भी उसके क्रान्तिकारी विचारों (धर्म की आलोचना) के कारण इस पत्र पर सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया और वह बेकार होकर घूमने लगा। इस दौरान उसने फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी तथा अमेरिका के इतिहास का मैकियावली, रूसो, सन्त

साइमन, मॉण्टेस्कयू तथा फोरियर जैसे काल्पनिक समाजवादियों की रचनाओं का गहन अध्ययन किया और समाजवादी साहित्य के प्रति अपनी आस्था में वृद्धि की। 25 वर्ष की आयु में मार्क्स ने 1843 ई० में मार्क्स का विवाह अपने प्रारम्भिक शिक्षक वैस्टफेलन की पुत्री जैनी वैस्टफेलन से हुआ। विवाह के बाद मार्क्स दंपति पेरिस चला गया और वहां पर मार्क्स 'फ्रेंको जर्मन शब्दकोष' का सम्पादक बन गया। अपने शासन और तत्कालीन व्यवस्था विरोधी विचारों के कारण उसे इस पत्र का प्रकाशन बन्द करना पड़ा। फ्रांस में उसका सम्पर्क प्रौंधा तथा बाकुनिन जैसे अराजकतावादियों से हुआ। उनके विचारों ने उसे अत्यधिक प्रभावित किया। 1845 ई० में उसने फ्रांस की सरकार के आदेश पर देश छोड़कर जाना पड़ा। अब वह सीधा इंग्लैण्ड गया और आजीवन वहीं रहा, यहां पर उसकी भेंट प्रसिद्ध उद्योगपति फ्रेडारिक एंजिल्स से हुई। मार्क्स ने ऐंजिल्स के साथ ही मिलकर अपना समाजवादी चिन्तन खड़ा किया और फरवरी, 1848 में साम्यवादी लीग की स्थापना की। यहां पर उन्होंने साम्यवादी विचारों पर व्यक्तव्य प्रकाशित किये जो विश्व में 'साम्यवादी घोषणा – पत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुए। यहीं से वैज्ञानिक समाजवाद का जन्म हुआ। ऐंजिल्स से आर्थिक सहायता प्राप्त करके मार्क्स ने निर्बाध रूप से अपने क्रान्तिकारी विचारों को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया उसने स्वयं एंजिल्स का ऋण स्वीकार करते हुए अपने समाजवादी चिन्तन को 'हमारा सिद्धान्त' की संज्ञा दी है। अपने इस सहयोगी के कारण ही मार्क्स दास कैपिटल (Das Capital) जैसे महान् ग्रन्थों की रचना कर सका। अपने इस ग्रन्थ के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के लिए उसने 1864 में लन्दन में प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन (First International) में जर्मनी में मदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व किया। इसके बाद मार्क्स ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दास कैपिटल' (Das Capital) के शेष भागों को पूरा करने के लिए अपनी लेखनी उठाई। लेकिन खराब स्वास्थ्य के कारण वे इसे पूरा नहीं कर सके और इस साम्यवादी सन्त की कैंसर के रोग के कारण 14 मार्च, 1883 को मृत्यु हो गई।

महत्त्वपूर्ण रचनाएं (Important Works)

मार्क्स ने अपने जीवनकाल में अनेक रचनाएं लिखी, उनकी दो सबसे महत्त्वपूर्ण रचनाएं – समाजवादी घोषणापत्र (Communist Manifesto) तथा दास कैपिटल (Das Capital) हैं।

I. **समाजवादी घोषणापत्र (Communist Manifesto) :** यह रचना मार्क्स और एंजिल्स द्वारा संयुक्त रूप से लिखी गई। यह रचना साम्यवादी दर्शन और क्रान्ति प्रक्रिया का मूलाधार है। जिसमें सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति की भविष्यवाणी की गई है। इस रचना में मार्क्स के सभी सिद्धान्तों – वर्ग, संघर्ष, पूंजीवादी के विकास, औद्योगिक संकटो, मध्यम वर्ग के लोग, मजदूरों के संगठन, मजदूर पार्टियां के आविर्भाव, निर्धन वर्ग की बढ़ती गरीबी, पूंजीपतियों द्वारा अपनी कब्र स्वयं खोदना, साम्यवादियों के मजदूरों के साथ सम्बन्ध, स्वप्नलोकीय (Utopian) समाजवादी की निन्दा तथा तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को बलपूर्वक बल देने की बात कही गई है। इसमें मजदूरों को संगठित होने के प्रेरित करते हुए कहा गया है – "दुनिया के मजदूरों, संगठित हो जाओ"। इसमें यह भी कहा गया है कि शासक वर्ग को क्रान्ति के भय से कांपने दो। तुम्हारे पास दासता की बेड़ियों को खोने के सिवाय कुछ नहीं है। यह पुस्तक साम्यवाद की गीता के रूप में मानी जाती है। इसमें सर्वप्रथम सर्वहारा वर्ग के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया हैं लास्की ने इस पुस्तक की तुलना अमेरिका के घोषणापत्र से की है। इस पुस्तक का प्रकाशन ऐसे समय में हुआ जब यूरोप के अनेक देशों में क्रान्तियों का बिगुल बज रहा था। इसलिए इस रचना को मार्क्स की महत्त्वपूर्ण रचना कहा जाता है।

II. **दास कैपिटल (Das Capital 1867)–** यह पुस्तक मार्क्स की समस्त रचनाओं में अद्वितीय है। मार्क्सवाद की पूरी जानकारी का आधार यही पुस्तक है। मार्क्स ने यह पुस्तक अपने परम मित्र एंजिल्स के सहयोग से लिखनी शुरू की और इसका प्रथम खण्ड 1867 में जर्मन भाषा में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में कुल तीन खण्ड है। मार्क्स ने प्रथम खण्ड में पूंजीवाद का व्यापक विश्लेषण

किया और उसके स्वरूप पर प्रकाश डाला। मार्क्स की मृत्यु होने के कारण इसके अन्तिम दो खण्ड एंजिल्स ने पूरे किए और मार्क्स को सच्ची श्रद्धांजली दी गई, इस पुस्तक को साम्यवादी साहित्य का वेद माना जाता है। यह रचना समाजवादी साहित्य पर सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रन्थ, साम्यवादी सिद्धान्तों की आधारशिला, श्रमिकों का ग्रन्थ तथा धनिकों का दिमाग ठण्डा करने का नुस्खा है। इस पुस्तक की बराबरी मार्क्सवादी साहित्य में अन्य कोई रचना नहीं कर सकती।

इसके अतिरिक्त मार्क्स की अन्य रचनाएं The Poverty of Philosopy (1847), The Critique of Political Economy (1859), Inaugural Address to the International Working Men Association (1864), Value, Price and Profit (1865), The Civil War in France (1870-71), The Gotha Programme (1875), Class – Struggle in France (1848), The German Ideology, The Holy Family आदि हैं।

इनमें से 'The Holy Family' पुस्तक में इतिहास की आर्थिक व्याख्या की गई है। यह पुस्तक मार्क्स के साम्यवादी सिद्धान्तों का आधार व प्रारम्भ बिन्दु है।

7.4 मार्क्स के विचारों के प्रेरणा – स्त्रोत (Inspiration of Marx's Ideas)

मार्क्स का दर्शन इतना मौलिक नहीं है जितना दिखाई देता है। सच्चाई तो यह है कि उसने अपने समय की नब्ज जो पहचान लिया था। तत्कालीन विचाराधाराओं से ग्रहण करने में जरा सा भी संकोच नहीं किया। इसलिए उसका दर्शन मौलिक नहीं कहा जा सकता। वह कोई विचारधारकों से प्रभावित हुआ है। इसलिए उसके विचारों का महत्त्व उसके विचारों की मौलिकता में न होकर उनकी गतिशील समग्रता में है। मार्क्स भली भांति जानते थे कि यदि उन्हें सफल होना है तो उन्हें वही भाषा बोलनी चाहिए जिसे लोग चाहते हैं। इसलिए उसने अनेक विचारधाओं को समयानुसार गतिशीलता प्रदान करके उन्हें जन उपयोगी बनाया। ग्रे का कथन है कि –"यह निर्विवाद सत्य है कि मार्क्स ने अपने चिन्तन के भवन के विभिन्न भागों के निर्माण हेतु विभिन्न स्त्रोतों से प्रेरणा ग्रहण की। उसने उसका निर्माण करने के लिए बहुत से भट्टों से ईंटें ली, लेकिन उनका प्रयोग अलग तरीके से

किया।" सारोकिन ने कहा है कि "मार्क्सवाद अनेक विचारधाराओं का ढेर है।" उसके सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि "मार्क्स ने एक चतुर माली की तरह विभिन्न रंग – रूपों सम्बन्धी सुन्दर फूलों (विचारधाराओं) को एकत्रित करके उन्हें वैज्ञानिक समाजवाद रूपी उस माला (विचारधारा) में पिरो दिया जिसने सर्वहारा वर्ग के गले की शोभा बढाई।" इस तरह मार्क्स के विचारों पर अनेक विचारधाराओं का व्यापक प्रभाव पड़ा। उसकी विचाराधारा को मूर्तरूप देने वाले प्रेरणा स्त्रोत निम्नलिखित हैं –

1. **फ्रांसीसी समाजवाद (Hegel and Feurback)** – मार्क्स से पहले भी फ्रांस में समाजवादी विचाराधारा का प्रतिपादन सेण्ट साइमन, चार्ल्स फोरियर, प्रौंधा आदि विचारकों द्वारा किया जा चुका था। इस समाजवाद का स्वरूप काल्पनिक होते हुए भी क्रान्किारी था, इसके क्रान्तिकारी चरित्र ने मार्क्स को सोचने के लिए विवश कर दिया, सेण्ट साईमन ने एतिहासिक प्रणाली के आधार पर यह बताया कि आर्थिक परिवर्तन राजनीतिक परिवर्तनों का ही परिणाम है। फोरियर ने भी इतिहास की आर्थिक व्याख्या पर बल दिया, लेकिन मार्क्स ने फ्रांसीसी समाजवादी केबेट के विचारों कि "साम्यवाद की स्थापना तभी संभंव है जब सारे आवश्यक कार्यों पर राज्य का नियन्त्रण हो" का अत्याधिक प्रभाव पड़ा। इससे स्पष्ट है कि मार्क्स और एंजिल्स को 1847 में साम्यवादी लीग की स्थापना करते समय 'समाजवाद' के स्थान पर 'साम्यवाद' शब्द का ही प्रयोग। इससे उसने काल्पनिक समाजवाद शब्द का ही प्रयोग किया। इससे उसने काल्पनिक समाजवाद से अपने साम्यवाद को अलग दर्शाया। मार्क्स ने वर्ग संघर्ष (Class – struggle) का सिद्धान्त, उत्पादन के साधनों को स्वामित्व का सिद्धान्त, श्रमिकों का उत्थान और पूंजीपति वर्ग के विनाश का सिद्धान्त, उत्पादन के साधनों के स्वामित्व का सिद्धान्त, श्रमिकों का उत्थान और पूंजीपति वर्ग के विनाश का सिद्धान्त आदि के फ्रांसीसी समाजवाद से ग्रहण किया, उसने "वर्ग – विहिन समाज" की कल्पना को सेण्ट साइमन से ग्रहण किया। मार्क्स तथा एंजिल्स ने स्वयं फ्रांसीसी समाजवादी विचारकों के प्रभाव को स्वीकर करते हुए कहा है कि "उन्होनें मजदूरों के

प्रबोधन के लिए जो अमूल्य सामग्री प्रदान की है, उसे भूलाया नहीं हो सकता।" फ्रांसीसी समाजवादियों के 'अमीर–गरीब के संघर्ष' की अवधारणा पर ही मार्क्स की पूंजीपति वर्ग व मजदूर वर्ग के आपसी संघर्ष (वर्ग–संघर्ष) का विचार टिका हुआ है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मार्क्स का वैज्ञानिक फ्रांसीसी समाजवाद के ऊपर ही आधारित है।

2. **हीगल एवं फ्यूअरबेक (Hegel and Feurback)** – मार्क्स पर हीगल तथा फ्यूअरबेक जर्मन – दार्शनिकों का गहरा प्रभाव पड़ा है। उसने हीगल से गतिशीलता का सिद्धान्त ग्रहण करते हुए सीखा है कि इतिहास घटनाओं की श्रृंखला मात्र न होकर, विकास की एक क्रमिक प्रक्रिया है। इस बारे में मार्क्स ने हीगल की रचनाओं 'Philosophy of Right' तथा 'Phenomenology of Mind' से काफी कुछ ग्रहण किया है। उसने फ्यूअरबेक की रचना 'Essence of Christianity' से भी बहुत कुछ लिया है। मार्क्स ने हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति को स्वीकार किया है। हीगल के अनुसार इस संसार में प्रत्येक वस्तु का विकास द्वन्द्वात्मक रूप में वाद (Thesis) प्रतिवाद (Anti - Thesis) तथा संवाद (Synthesis) की प्रक्रिया द्वारा होता है। कालान्तर में 'वाद' प्रतिवाद बन जाता है और आगे चलकर वाद और प्रतिवाद दोनों के मेल से 'संवाद' का जन्म होता है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। हीगल के अनुसार द्वन्द्ववादी निर्वचन आदर्शात्मक तथा विचारात्मक था। मार्क्स ने इस पद्धति को बदलकर विचारात्मक के स्थान पर भौतिकता का रूप दे दिया है। मार्क्स पदार्थ या आर्थिक शक्ति को द्वन्द्वात्मक विकास का आधार मानता है। मार्क्स ने फ्यूअरबेक के भौतिकवाद को हीगल के अमूर्त विचारवाद के साथ मिलाकर नई द्वन्द्वात्मक पद्धति को मूर्त रूप दिया है। मार्क्स ने अपने ग्रन्थ 'Das Capital' की भूमिका में लिखा है कि "मेरा द्वन्द्ववाद हीगल से न केवल भिन्न है बल्कि उससे ठीक उल्टा भी है।" सेबाइन ने कहा है कि "मार्क्स ने हीगल के द्वन्द्वात्मक चिन्तन जो शीर्षासन कर रहा था के पैरों के बल प्राकृतिक स्थिति में खड़ा किया है।" हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति ही मार्क्स के दर्शन का आधार है। चाहे मार्क्स ने इसे किसी भी रूप में ग्रहण किया है, लेकिन हीगल का

प्रभाव मार्क्स के दर्शन पर बहुत अधिक मात्रा में है। यद्यपि मार्क्स ने हीगल व फ्यूअरबेक का अन्धाधुन्ध अनुसरण न करके उपयोगी तत्वों को ही ग्रहण किया है। इस प्रकार परोक्ष रूप में मार्क्स ने हीगल से काफी कुछ ग्रहण किया। मार्क्स ने अपनी रचना में हीगल का परोक्ष स्वयं स्वीकार किया है।

3. **ब्रिटिश राजनीतिक अर्थशास्त्र (British Political Economy) –** मार्क्स पर जिन अंग्रेज अर्थशास्त्रियों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा वे हैं – एडमस्थिम, रिकार्डो तथा हॉग्सकिन। इन अर्थशास्त्रियों ने 'श्रम आधारित मूल्य सिद्धान्त' तथा 'अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त' को प्रतिपादित करके पूंजीपतियों के हितों का पोषण किया था। मार्क्स के इस सिद्धान्तों को अपना आधार बनाकर "अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त" (Theory of Surplus – Value) का निर्माण करके इसका प्रयोग श्रमिकों के हितों का पोषण करने के लिए किया। मार्क्स ने बताया कि अतिरिक्त पूंजी पर श्रमिकों का अधिकार बनता है। लेकिन पूंजीपति वर्ग अपने सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रभाव के कारण श्रमिकों के उनके हक से वंचित करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार मार्क्स ने ब्रिटिश राजनीतिक अर्थशास्त्रियों के अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त को ज्यों का त्यों स्वीकार करके पूंजीपति वर्ग के स्थान पर केवल श्रमिक वर्ग के हितों की व्याख्या करने के लिए ही किया है। इसलिए ग्रे ने कहा है – "सामान्य व्यक्ति के लिए मार्क्स 'अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त' रिकोर्डो के मूल्य सिद्धान्त के सिवाय कुछ नहीं है।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि मार्क्स पर ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों का भी व्यापक प्रभाव है। ब्रिटिश राजनीतिक अर्थशास्त्र मार्क्स के 'अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त' का प्रेरणा स्त्रोत है।

4. **यूरोप में सामाजिक – आर्थिक परिस्थितियां** (Socio – Economic Conditions in Europe) – मार्क्स के समय में यूरोप के समाज में पूंजिपति वर्ग (बुर्जआ वर्ग) सर्वहारा वर्ग का पूर्व शोषण कर रहा था। कारखानों पर बुर्जआ वर्ग का पूर्ण अधिकार था। यह वर्ग श्रमिक वर्ग (सर्वहारा वर्ग) के हितों की लगातार अनदेखी कर रहा था। उस युग में पैदा हुए समाजवादी चिन्तकों ने सर्वहारा वर्ग की दुर्दशा पर विचार किया और काफी कुछ लिखा। औद्योगिक क्रान्ति के

दौरान पैदा हुए सर्वहारा वर्ग के बारे में सर्वप्रथम मार्क्स ने विस्तार से विचार किया। मार्क्स ने तत्कालीन सामाजिक – आर्थिक विषमताओं को समाज के लिए घातक माना और पूंजीपति वर्ग के खिलाफ सर्वहारा वर्ग को संगठित करने का प्रयास किया, मार्क्स ने काल्पनिक समाजवादियों के चक्रव्यूह को तोड़कर सर्वहारा वर्ग के हितों के लिए आवाज उठाई। उसने सर्वहारा वर्ग को क्रान्तिकारी दर्शन दिया। उसने अपनी पुस्तक 'Communist Manifesto' में मजदूर वर्ग को संगठित होने का आह्वान किया ताकि वे पूंजीपति वर्ग के शोषण को समाप्त कर सकें। इस तरह मार्क्स ने तत्कालीन सामाजिक – आर्थिक परिस्थितियों से भी काफी कुछ सीखा और अपने दर्शन को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

इस तरह कहा जा सकता है कि मार्क्स पर हीगल, फ्यूअरबेक, एडम स्मिथ, रिकार्डो सेण्ट साइमन आदि के विचारों का काफी प्रभाव पड़ा। लेकिन मार्क्स ने उनकी मूल्यवान विचार सामग्री को ही ग्रहण किया और अनावश्यक व अनुपयोगी सामग्री का त्याग कर दिया। उसने प्रत्येक विचार को तार्किक आधार पर जांच – परख करके प्रयुक्त किया। उसने बिखरे हुए विचारों को तार्किक संगति (Logical Coherence) प्रदान की। इसलिए सोरोकिन का यह विचार सत्य है कि मार्क्सवाद अनेक विचारधाराओं का ढेर है। मार्क्स का साम्यवाद रूपी भवन अनेक विचारधाराओं रूपी ईंटो का संग्रह है। उसके मार्क्सवाद का आधार अनेक विचारकों के मूल्यवान विचारों का समन्वय है। जो मार्क्स की महत्त्वपूर्ण प्रयास है। इसलिए मार्क्स का महत्त्व उसकी मौलिकता में नहीं, बल्कि उसकी संश्लेषणात्मता में है। तत्कालीन सामाजिक – आर्थिक परिस्थितियों ने इस संश्लेष्णात्मकता को व्यापक आधार प्रदान किया है। ये परिस्थितियां ही मार्क्सवाद को प्रारम्भिक और अन्तिम बिन्दु है।

7.5 कार्ल मार्क्स का वैज्ञानिक समाजवाद

मार्क्सवाद को सर्वप्रथम वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का श्रेय कार्ल मार्क्स व उसके सहयोगी एंजिल्स को जाता है। फ्रांसीसी विचारकों सेण्ट साईमन तथा चार्ल्स फोरियर ने जिस समाजवाद का प्रतिपादन किया था, वह काल्पनिक था। मार्क्स ने

अपनी पुस्तकों तथा के वैज्ञानिक समाजवाद का प्रतिपादन किया। वेपर ने कहा है कि "पूर्ववर्ती समाजवादी विचारकों ने सुन्दर गुलाबों के स्वप्न लिए थे, गुलाब के पौधे उगाने के लिए जमीन तैयार नहीं की।" यह कार्य तो मार्क्स ने किया। उसने काल्पनिक समाजवाद को व्यावहारिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। उसने एक वैज्ञानिक की तरह सामाजिक प्रगति के लिए उत्तरदायी तत्वों को खोज निकाला और एक वर्ग विहीन समाज की स्थापना के लिए विधिवत् प्रक्रिया का रास्ता बताया। इसलिए मार्क्स का दर्शन अत्यन्त सुसम्बद्ध व व्यवस्थित होने के कारण वैज्ञानिक है और उसका समाजवाद भी वैज्ञानिक समाजवाद है।

मार्क्स के दर्शन को मोटे तौर पर तीन भागों में बांटा जा सकता है –

I. Dialectical Materialism (द्वन्द्ववात्मक भौतिकवाद)

II. Historical Materialism (ऐतिहासिक भौतिकवाद)

III. Theory of Class – Struggle and Concept of Surplus – Value (वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त एवं अतिरिक्त मूल्य की अवधारणा)

मार्क्स के दर्शन की व्याख्या निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर की जा सकती है –

7.6 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism)

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त मार्क्स के सम्पूर्ण चिन्तन का केन्द्र बिन्दु है। मार्क्स ने हीगल के द्वन्द्ववाद को अपने इस सिद्धान्त का आधार बनाया है। मार्क्स का मानना है कि संसार में हर प्रगति द्वन्द्वात्मक रूप में हो रही है। हीगल के विचार तत्व के स्थान पर द्वन्द्वात्मक रूप में हो रही है। हीगल के विचार तत्व के स्थान पर मार्क्स ने पदार्थ तत्व को महत्त्वपूर्ण बताया है। मार्क्स के अनुसार जड़ प्रकृति या पदार्थ ही इस सृष्टि का एकमात्र मूल तत्व है। इसे इन्द्रिय ज्ञान से देखा जा सकता है। जो सिद्धान्त जड़ प्रकृति या पदार्थ में विश्वास रखता है, भौतिकवाद कहलाता है। मार्क्स के अनुसार आत्मा तत्व का कोई अस्तित्व नहीं है। इसके विपरित पेड़ – पौधे, जीव – जन्तु, मकान आदि वस्तुएं प्रत्यक्ष रूप से देखी जा सकती है, इसलिए से सत्य है। ये भौतिक वस्तुएं ही विचारों का आधार होती है।

मार्क्स का मानना है कि इस जगत का विकास किसी अप्राकृतिक शक्ति के अधीन न होकर, उसकी अर्न्तमयी विकासशील प्रकृति का ही परिणाम है।

हीगल ने द्वन्द्वात्मक का प्रयोग विश्वात्मा (World Spirit) के विचार को स्पष्ट करने के लिए किया है। हीगल ने द्वन्द्ववाद की प्रक्रिया के तीन अंग–वाद (Thesis), प्रतिवाद (Anti-Thesis) तथा संवाद (Synthesiss) है। हीगल का मानना है कि प्रत्येक वस्तु के विचार में ही विरोधी तत्वों का समावेश होता है। कालान्तर में जब ये विरोधी तत्व वाद पर हावी हो जाते हैं तो निषेधात्मक निषेध (Negative Negation) के नियम के द्वारा प्रतिवाद का जन्म होता है। यही द्वन्द्ववाद प्रक्रिया का प्रमुख आधार है। सही अर्थों में द्वन्द्वात्मकता विरोधी तत्वों का अध्ययन हे। विकास विरोधी तत्वों के बीच संघर्ष का परिणाम है। इसी के एक उच्चतर वस्तु का जन्म होता है। इसी से सभी ऐतिहासिक व सामाजिक परिवर्तन होते हैं। मार्क्स ने हीगल के द्वन्द्वात्मक को तो सत्य माना है। लेकिन उसके विचार तत्व का प्रतिकार किया है। उसने पदार्थ तत्व को महत्त्व देकर भौतिकवाद का ही पोषण किया है। उसके अनुसार द्वन्द्वात्मक विकास पदार्थ या जड़ प्रकृति की परस्पर विरोधीमयी प्रकृति के कारण होता है। इसलिए उसका भौतिकवाद द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) – मार्क्स के इस सिद्धान्त को समझने के लिए द्वन्द्व, भौतिक तथा वाद तीनों शब्दों का अलग – अलग अर्थ समझना आवश्यक है। (क) 'द्वन्द्व' से तात्पर्य है – दो विरोधी पक्षों का संघर्ष। (ख) 'भौतिक' का अर्थ है – जड़ तत्व अथवा अचेतन तत्व। 'वाद' से तात्पर्य है – सिद्धान्त, विचार या धारणा। इस प्रकार सरल अर्थ में 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' का अर्थ है वह भौतिकवाद जो द्वन्द्ववाद की पद्धति को स्वीकृत हो। अर्थात् जड़ प्रकृति या पदार्थ को सृष्टि का मौलिक तत्त्व मानने वाला सिद्धान्त भौतिकवाद है। इसी तरह द्वन्द्ववादी प्रक्रिया के अनुसार जड़ जगत में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। पदार्थ की विरोधमयी प्रकृति के कारण इस सृष्टि में निरन्तर होने वाला परिवर्तन या विकास द्वन्द्वात्क भौतिकवाद कहलाता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आधाभूत मान्यताएं (Basic Assumption of Dialectical Materialism) – मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आधारभूत मान्यताएं या धाराणाएं निम्नलिखित हैं –

I. सृष्टि का मूल तत्व 'पदार्थ' है।

II. सृष्टि और उसमें मौजूद मानव – समाज का विकास द्वन्द्वात्मक पद्धति से होता है।

मार्क्स का माना है कि यह सारा संसार 'पदार्थ' (Matter) पर ही आधारित है अर्थात् इस सृष्टि का स्वभाव पदार्थवादी है। इसलिए विश्व के विभिन्न रूप गतिशील पदार्थ के विकास के विभिन्न रूपों के प्रतीक हैं और यह विकास द्वन्द्वात्मक पद्धति द्वारा होता है। इसलिए भौतिक विकास आत्मिक विकास से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस जगत का विकास किसी बाहरी शक्ति के अधीन न होकर, उसकी भीतरी शक्ति तथा उसको स्वभाव में परिवर्तन का ही परिणाम हैं इस तरह मार्क्स ने पूर्ववर्ती मार्क्सवाद के ऊपर लगाए गए कई आपेक्षों का हल पेश कर दिया।

मार्क्स की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया – मार्क्स तथा एंजिल्स ने अपनी इस प्रक्रिया को अनेक उदाहरणों द्वारा समझाया है। गेहूं के पौधे का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा है कि गेहूं का दाना का वाद है। भूमि में बो देने पर यह गलकर या नष्ट होकर अंकुरित होता है और एक पौधे के रूप ले लेता है। यह पौधा द्वन्द्वात्मक विकास में 'प्रतिवाद' (Anti - thesis) है। इस प्रक्रिया का तीसरा चरण पौधे में बाली का आना, उसका पकना तथा उसमें दाने बनकर पौधे का सूख जाना है। यह संवाद कहलाता है। यह वाद और प्रतिवाद दोनों से श्रेष्ठ है। उन्होनें आगे उदाहरण देते हुए कहा है कि पूंजीवाद 'वाद' है। सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद को 'प्रतिवाद' तथा साम्यवाद संवाद कहा जा सकता है। यहां पूंजीवाद संघर्ष के बार विकसित रूप में पौधा रूपी अधिनायकवाद की स्थाना होगी जो अन्त में साम्यवादी व्यवस्था के रूप में पहुंचकर आदर्श व्यवस्था (संवाद) का रूप ले लेगा।

मार्क्स का मानना है कि द्वन्द्ववाद की यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। कालान्तर में वाद, प्रतिवाद तथा प्रतिवाद संवाद बनकर वापिस पूर्ववत स्थिति (वाद)

में आ जाते हैं। जैसे गेहूं के दाने से पौधा बनना, पौधे से फिर दाने बनना, प्रत्येक वस्तु की विरोधीमयी प्रवृति ही द्वन्द्वात्मक विकास का आधार होती है। इससे ही नए विचार (संवाद) का जन्म होता है। इस प्रक्रिया में पहले किसी वस्तु का 'निषेद्य' (Negation) होता है और बाद में 'निषेद्य का निषेद्य' (Negation of Negation) होता है और एक उच्चतर वस्तु अस्तित्व में आ जाती है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विशेषताएं (Characteristics of Dialectical Materialism) – मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

1. **आंगिक एकता (Organic Unit)** – मार्क्स के अनुसार इस भौतिक जगत में समस्त वस्तुएं व घटनाएं एक – दूसरें से सम्बन्धित है। इसका कारण इस संसार का भौतिक होना है। यहां पदार्थ का अस्तित्व विचार से पहले है। संसार से सभी पदार्थ व घटनाएं एक – दूसरे को प्रभावित भी करते हैं और उनमें अंगिक एकता भी है। एक घटना को समझे बिना दूसरी घटना का यथार्थ रूप नहीं समझा जा सकता है।
2. **परिवर्तनशीलता (Changeability) –** मार्क्स का मानना है कि आर्थिक शक्तियां संसार के समस्त क्रिया – कलापों का आधार होती है। ये सामाजिक व राजनीतिक विकास की प्रक्रिया पर भी गहरा प्रभाव डालती है। ये आर्थिक शक्तियां स्वयं भी परिवर्तनशील होती है और सामाजिक विकास की प्रक्रिया को भी परिवर्तित करती हैं। यह सब कछ द्वन्द्ववादी प्रक्रिया पर ही आधारित होता है। इसलिए विश्व में कुछ भी शाश्वत् वे स्थायी नहीं है। प्रकृति निरन्तर रूप बदलती रहती है। परिवर्तन ही सृष्टि का नियम है।
3. **गतिशीलता (Dynamism) –** मार्क्स का मानना है कि प्रकृति में पाया जाने वाला प्रत्येक पदार्थ गतिशील है। जो आज है, कल नहीं था, कल था व आज नहीं है और जो आज है वह कल नहीं होगा। गतिशीलता का यह सिद्धान्त इस जड़ प्रकृति में निरन्तर कार्य करता है और नई – नई वस्तुओं या पदार्थों का निर्माण करता है। इसलिए यह भौतिकवादी विश्व सदैव गतिशील व प्रगतिशील है। इससे गतिशील बनने में किसी बाहरी शक्ति की आवश्यकता

नहीं होती है। स्वत' ही गतिशील रहता है क्योंकि गतिशीलता जड़ प्रकृति का स्वभाव है।

4. **परिमाणात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन (Quantitative and Qualitative change)** – प्रकृति में परिवर्तन एवं विकास साधारण रीति से केवल परिमाणात्मक (Quantitative) ही नहीं होते बल्कि गुणात्मक (Qualitative) भी होते हैं। ये परिवर्तन क्रान्तिकारी तरीके से होते हैं। पुराने पदार्थ नष्ट होकर नए रूप में बदल जाते हैं और पुरानी वस्तुओं में परिणात्मक परिवर्तन विशेष बिन्दु पर आकर गुणात्मक परिवर्तन आ जाएगा। इस गुणात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया को क्रान्तिकारी प्रक्रिया कहा जाता है। ये परिवर्तन धीरे – धीरे न होकर झटके के साथ व शीघ्र होते हैं। इसी से पदार्थ का पुराना रूप नष्ट होता है और नया रूप अस्तित्व में आता है।

5. **संघर्ष (Struggle) –** मार्क्स का मानना है कि प्रत्येक वस्तु में संघर्ष या प्रतिरोध का गुण अवश्य पाया जाता है। यह विरोध नकारात्मक व सकारात्मक दोनों होता है। जगत के विकास का आधार यही संघर्ष है। संघर्ष के माध्यम से ही विरोधी पदार्थों में आपसी टकराव होकर नए पदार्थ को जन्म देता है। इस संघर्ष में ही नई वस्तु का अस्तित्व छिपा होता है।

द्वन्द्वदात्मक भौतिकवाद के नियम (Laws of Dialectical Materialism) – मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के तीन नियम है –

(क) विपरित गुणों की एकता व संघर्ष का नियम,
(ख) परिमाणात्मक द्वारा गुणात्मक परिवर्तन का नियम,
(ग) निषेद्यात्मक निषेद्य का नियम।

(क) **विपरित गुणों की एकता व संघर्ष का नियम (Law of unity and struggle of opposites) –** यह नियम मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रमुख भाग है। इसे द्वन्द्ववाद का सार तत्व भी कहा जा सकता है। यह नियम प्रकृति, समाज और चिन्तन के विकास की द्वन्द्ववादी प्रक्रिया को समझने के लिए अति आवश्यक है। इस नियम के अनुसार संसार की सभी वस्तुओं के अन्दर विरोध

अन्तनिर्हित है। विरोधों के संघर्ष के परिणामस्वरूप ही जगत के विकास की प्रक्रिया चलती है। इसी के द्वारा मात्रात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन में बदलते हैं। मार्क्स ने एक चुक्बक का उदाहरण देकर बताया है कि प्रत्येक चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं, जिन्हें उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के नाम से जाना जाता है। ये एक दूसरे के निषेद्यक होते हुए भी एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। चुम्बक के कितने भी टुकड़े कर दिए जाएं ये परस्पर विरोधी ध्रुव नष्ट नहीं होते। इसी प्रकार चुम्बक की तरह प्रत्येक वस्तु या पदार्थ में परस्पर विरोधी ध्रुव विद्यमान रहते हैं। वे उसके आन्तिरिक पक्षों, प्रवृतियों या शक्तियों के प्रतीक हैं, जो परस्पर निद्येषक होने के बावजूद भी परस्पर सम्बन्धित होते हैं। इन परस्पर अन्तर्विरोधी अविन्छेदनीय सम्बन्धों से ही विपरीतों की एकता का जन्म होता है। उदाहरण के लिए श्रमिक और पूंजीपति एक – दूसरे के विपरित वर्ग – चरित्र होते हुए भी एक एकताबद्ध पूंजीवादी समाज का निर्माण करते हैं। इनमें से एक का अभाव पूंजीवादी समाज के अस्तित्व को नष्ट कर देगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसी वस्तु की एकता की सीमाओं के भीतर ही विरोधियों के बीच संघर्ष चलता रहता है। यही पदार्थ और चेतना का विकास का स्त्रोत है। लेनिन ने कहा है कि –"विकास विपरीतों का संघर्ष है।" जिस वस्तु में जितनी संघर्ष की प्रवृति रहती है, वह वस्तु उतनी ही गतिशील व परिवर्तन होती है। यह समाज के विकास का आधार है।

(ख) **परिणामात्क द्वारा गुणात्मक परिवर्तन का नियम (Law of Qualitative change induced by Quantitative Changes)** – मार्क्स का कहना है कि मात्रा में बड़ा अन्तर आने पर गुण में भी भारी अन्तर आ जाता है। यही नियम प्रकृति में होने वाली आकस्मिक घटनाओं की व्याख्या का आधार है। उदाहरण के लिए – जैसे हम पानी को गर्म करते हैं तो वह एक निश्चित बिन्दु पर भाप में बदल जाता है। उसी प्रकार उसका तापमन एक निश्चित बिन्दु तक कम करने पर वह बर्फ बन जाता है। यह जल का गुणात्मक परिवर्तन है। इस तरह वस्तुओं में भारी मात्रात्मक परिवर्तन से गुणात्मक परिवर्तन होना अवश्यम्भावी हो जाता है। वैसे तो छोटे – मोटे परिवर्तन सृष्टि की समस्त वस्तुओं में

निरन्तर होते रहते हैं, लेकिन उनसे वस्तु के मूल स्वरूप में कोई बदलाव नहीं आता। वह वस्तु के मूल स्वरूप में कोई बदलाव नहीं आता। यह परिवर्तन तो विशेष बिन्दु पर ही होता है। ये परिवर्तन जब सामाजिक क्षेत्र में होते हैं तो इन्हें हम क्रान्ति कहते हैं। कुछ समय तक धीरे – धीरे परिवर्तन होने के बाद औद्योगिक क्रान्ति, फ्रेंच राज्य क्रान्ति रूसी राज्य क्रान्ति जैसे परिवर्तन अकस्मात् ही होतें है। उदाहरणार्थ औद्योगिक क्रान्ति या पूंजीवाद का परिवर्तन होने से पहले उपनिवेशों के शोषण से थोड़े से ही पूंजीपतियों के पास पूंजी का संग्रह होने लगता है और दूसरी तरफ किसानों के जमीनों से वंचित होने पर भूसम्पत्ति सर्वहारा वर्ग की संख्या बढ़ने लगती है। ये दोनों परिवर्तन धीरे – धीरे होते हैं। किन्तु एक समय ऐसा आता है जब कारखानों को बनाने के लिए पर्याप्त पूंजी व मजदूर उपलब्ध हो जाते हैं तो उसी समय औद्योगिक क्रान्ति आती है और पूंजीवाद की स्थापना हो जाती है। मार्क्स क्रान्ति की स्वाभाविकता को सिद्ध करने के लिए इस नियम का औचित्य सिद्ध करता है और कहता है कि परिमाणात्मक से गुणात्मक परिवर्तन करने वाली क्रान्तियां है नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना छंलाग द्वारा समाजवाद में बदल जाएगा और सामाजिक व्यवस्था में भारी गुणात्मक अन्तर आएगा।

(ग) **निषेद्यात्मक निषेद्य का नियम (Law of Negative Negation) –** यह नियम प्रकृति के विकास का अन्तिम नियम प्रकृति के विकास की सामान्य दशा पर प्रकाश डालता है। 'निषेद्य' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हीगल ने विचार तत्व के विकास के लिए किया था। मार्क्स ने इसका प्रयोग भौतिक जगत में किय। निषेद्य शब्द का अर्थ किसी पुरानी वस्तु से उत्पन्न नई वस्तु का पुरानी वस्तु को अभिभूत कर लेने से है। अतः निषेद्य विकास का प्रमुख अंग है। किसी भी क्षेत्र में तब तक कोई विकास नहीं हो सकता जब तक किवह अपने अस्तित्व के पुराने रूप का निषेद्य न करे। निषेद्य ही अन्तर्विरोधों का समाधान करता है। पुरानी वस्तुओं का स्थान नई वस्तु लेती है। विकास के इस क्रम में पुराना नया हो जाता है और फिर कोई और नया उसका स्थान ले लेता है। इस प्रकार विकास का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। यह निषेद्य की प्रक्रिया

समय की अविरल धारा के समान निर्बाधा रूप से चलती रहती है। प्रत्येक पुराना नए को जन्म देते समय उसके निषेद्य को जन्म देकर इस विकास की प्रक्रिया को गतिशील बनाता है। निषेद्य से निषेद्य की उत्पत्ति होती है। कालान्तर में निषेद्य निषेद्य को जन्म देता है और निषेद्य का अनन्त क्रम जारी रहता है। अतः विकास अनगणित क्रमबद्ध निषेद्यों की एक सत्य कहानी है। अर्थात् प्रगति द्वन्द्वात्मक विकास की आम दशा है। यह सर्पिल आकार में उच्च से उच्चतर स्थिति की तरफ निरन्तर प्रवाहमान रहती है। मार्क्स ने उदाहरण देकर निषेद्य की प्रक्रिया को समझाते हुए कहा है – "आदिम साम्यवाद का दास समाज, दास समाज का सामन्तवाद, सामन्तवाद का पूंजीवाद, पूंजीवाद का समाजवाद निषेद्य करता है। इन्में प्रत्येक अगला प्रथम का निषेद्य है और यह प्रक्रिया सतत् रूप से चलती है। यही विकास का आधार है। एंजिल्स ने इसको समझाते हुए कहा है कि – अण्डों से तितलियां अण्डों का निषेद्य करके ही उत्पन्न होती हैं और नए अण्डे तब उत्पन्न होते हैं जब तितलियों का निषेद्य हो जाता है। इसी तरह मार्क्स ने कहा है कि निजी सम्पत्तिवादी समाज व्यवस्था आदिम साम्यवाद का निषेद्य है और इसके स्थान पर निषेद्य द्वारा वैज्ञानिक समाजवाद की स्थाना होगी जो पहले दोनों से श्रेष्ठ होगा। इस तरह प्रत्येक पदार्थ में अन्तर्विरोधों के संघर्ष में निषेद्य का नियम कार्य करता है और इसी से समाज की प्रगति का मार्ग आर्ग बढ़ता है। अतः निषेद्यात्मक निषेद्य का नियम प्रगति का आधार है।

मार्क्स के द्वन्द्ववाद की हीगल के द्वन्द्ववाद से तुलना

(Comparison of Marx's Dialecticism with Hegel's Dialecticis)

यद्यपि मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक पद्धति का विचार हीगल से लिया था लेकिन फिर भी उन दोनों में आपसी मतभेद पाए जाते हैं।

दोनों में समानता – हीगल तथा मार्क्स दोनों द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के तीन तत्वों वाद, प्रतिवाद व संवाद में विश्वास करते हैं। मार्क्स भी हीगल की तरह विश्वास करता है कि 'वाद' में निषेद्य होने पर प्रतिपाद का जन्म होता है और कालान्तर में 'प्रतिवाद'

भी निषेद्य के गुण द्वारा 'संवाद' बन जाता है। यह प्रक्रिया निषेद्यात्मक निषेद्य के नियम द्वारा अनवरत रूप से चलती रहती है। कालान्तर में संवाद निषेद्य द्वारा वाद को उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया जल चक्र के समान प्रकृति में सदैव विद्यमान रहती है। इस तरह हीगल व मार्क्स दोनों द्वन्द्ववादी प्रक्रिया पर समानता का रूख रखते हैं।

दोनों में असमानता – मार्क्स ने हीगल के विपरीत भौतिकवाद को अपने दर्शन का आधार बनाया है। हीगल के मत में भौतिक वस्तुएं प्रकृति आदि आत्मा के विकार या उससे उत्पन्न हैं। लेकिन मार्क्स का कहना है जिसे हम आत्मा, मन अथवा मस्तिषक कहते हैं, वह उसी प्रकार भौतिक शरीर से उत्पन्न वस्तुएं हैं जैसे घड़ी के पुर्जों को एक निश्चित क्रम से संयुक्त करने पर उसमें गति आ जाती है। इस प्रकार हीगल विचारों को प्रधान मानते हुए पदार्थ को विचारों का प्रतिबिम्ब मानता है। किन्तु मार्क्स 'पदार्थ' तत्व को प्रमुख देता है और उसका विचार है कि 'पदार्थ' से ही विचारों की उत्पत्ति होती है। मार्क्स ने कहा है – "मानवीय चेतना उसके सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना का निर्धारण करता है।" मार्क्स ने आगे कहा है कि "मैनें हीगल के द्वन्द्ववाद को जो शीर्षासन कर रहा था, उसके अन्दर छिपे विचारों को जानने के लिए पैरों के बल खड़ा किया है।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि हीगल व मार्क्स में आधारभूत समान्ता होते हुए भी दोनों की द्वन्द्ववादी पद्धति में कुछ अन्तर भी है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आलोचना (Criticism of Dialectical Materialism)

मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं –

1. **गूढ़ तथा अस्पष्ट (Vague and Unclear)** – मार्क्स ने द्वन्द्ववाद की जो व्याख्या की है, उसमें अस्पष्टता का पुट अधिक है। वेवर ने उसकी इस धारणा को अत्यधिक रहस्मयी बताया है। उसने आगे कहा है – "मार्क्स यह नहीं बताता कि भौतिकवाद से उसका क्या अभिप्राय है। वह केवल यही बताता है कि उसका भौतिकवाद यान्त्रिक न होकर द्वन्द्वात्मक है। मार्क्स ने यह नहीं बताया

कि पदार्थ किस तरह गतिशील होता है। लेनिन ने स्वयं स्वीकार किया है कि हीगल के द्वन्द्ववाद के समझे बिना मार्क्स के द्वन्द्ववाद को समझना अति कठिन कार्य है। अतः मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अत्यन्त रहस्यमी है। यद्यपि लेनिन तथा अन्य साम्यवादी लेखकों ने अपनी रचनाओं में इसको स्थान देने का प्रयास तो किया है, लेकिन वे इसकी विस्तृत विवेचना करने में असफल रहे। इसका प्रमुख कारण इसी अस्पष्टता है।

2. **आत्म–तत्व की उपेक्षा (Ignores Individual Element)** – इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचना यह भी है कि आत्म तत्व की घोर उपेक्षा करता है। मार्क्स ऐन्द्रिय ज्ञान को ही प्रामाणिक मानता है। भारतीय आध्यात्मवादी विचारकों व लेखकों के मन में मार्क्स की बात उतर नहीं सकती। मार्क्स ने जितने बल से जड़ जगत की सत्ता सिद्ध की ही; दूसरी व्यक्ति उतनी ही प्रबलता से अनुभव के आधार पर आत्मा की सत्ता सिद्ध करते हैं। अतः आत्मा के तत्व में विश्वास रखने वालों की दृष्टि से विशेष रूप से भारतीय आध्यात्मवाद की दृष्टि से मार्क्स का यह सिद्धान्त गलत है।

3. **विकास एवं जड़–चेतन पदार्थ (Evolution in living and Non – living sustance)** – आलोचकों का कहना है कि द्वन्द्ववाद आदर्शवाद से तो कदाचित सम्भव हो सकता है, लेकिन भौतिकवाद में नहीं। विवेक या विश्वात्मा आन्तरिक आवश्यकताओं के कारण स्वयं विकासित हो सकती है, परन्तु पदार्थ जो आत्मा विहीन होता है, स्वयं विकसित नहीं हो सकता। इसलिए जड़ जगत में होने वाले सारे परिवर्तन आन्तरिक शक्ति की बजाय बाहरी शक्ति का ही परिणाम है। उदाहरण के लिए मोटर एक जड़ – पदार्थ है। वह स्वयं नहीं चल सकती। उसे चलाने के लिए चेतन पदार्थ की आवश्यकता पड़ती है। इस तरह जड़ व चेतन को समान मानना व उनकी तुलना करना तर्कसंगत नहीं हो सकता। भौतिक जगत के नियम उसी रूप में मानव – समाज में लागू नहीं हो सकते। मार्क्स के वर्ग – विहीन समाज की स्थापना भौतिक आधार पर ही नहीं हो सकती बल्कि सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति की प्रेरणा में मानवीय चेतना का बहुत बड़ा हाथ होता है।

4. **अप्रमाणिक (Unproved)** – मार्क्स ने अपने द्वन्द्वात्क भौतिकवाद की पुष्टि दृष्टांतो के आधार पर की है न की प्रमाणों के आधार पर। दृष्टांतों का प्रयोग भी मनमाने ढंग से किया गया है। प्राणिशास्त्र के नियम इतिहास के नियमों से भिन्न होते हैं। लेनिन तथा एंजिल्स ने स्वंय कहा था – "जीवशास्त्र के विचारों को हमें सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में नहीं लाना चाहिए।" अतः यह मानना अनुचित है कि भौतिक जगत के नियम मानव जीवन के समान रूप से लागू हो सकते हैं। ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण मार्क्स ने नहीं दिया, जिससे माना जा सके कि भौतिक जगत व प्राणी जगत के नियम समान हैं।
5. **नैतिक मूल्यों की उपेक्षा (Neglect of Moral Values)** – मार्क्स ने पदार्थ तत्व को मानवीय चेतना एवं अंतःकरण से अधिक महत्व दिया है। उसने मनुष्य को स्वार्थी प्राणी माना है जो अपने हित के लिए नैतिक मूल्यों एवं मर्यादाओं की उपेक्षा करता है। सत्य तो यह है कि मनुष्य स्वार्थी होने के साथ परोपकार क गुण भी रखता है। इस तरह नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करके मार्क्स ने पक्षपाती व एकांगी दृष्टिकोण का ही परिचय दिया है।
6. **सामाजिक जीवन में अमान्य (Not Applicable in Social Life)** – मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त जड़ जगत् से सम्बन्धित एक भौतिकवादी वैज्ञानिक सिद्धान्त है, जिसे मानव के सामाजिक जगत में पूरी तरह से लागू करना कठिन है। वस्तुतः सामाजिक जीवन की मुख्य इकाई स्वयं व्यक्ति होता है जो पदार्थ की तरह व्यवहार नहीं करता है। सामाजिक जीवन की घटनाएँ प्रकृति के नियमों के अनुसारी चलती है। इस तरह सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में मार्क्स की वैज्ञानिक दृष्टि का दावा खोखला व अमान्य है तथा मार्क्स की द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त सामाजिक जीन में लागू नहीं हो सकता।
7. **मनोवैज्ञानिक दोष (Psychological Defect)** – मार्क्स ने भौतिक जगत के विकास का आधार संघर्ष को माना है। वह भौतिक संतुष्टि को ही मानसिक संतुष्टि का आधार मानता है। किन्तु यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि कई बार मनुष्य दुःखों में भी मानसिक रूप से संतुलित रहता है। कई बार निर्धन

व्यक्ति धनवानों की बजाय अधिक संतुष्ट दिखाई देता है। इस तरह मार्क्स ने सहयोग, प्रेम, सहानुभूति एवं सहिष्णुता आदि मानवीय गूणों की उपेक्षा करके मानवीय स्वभाव का दोषपूर्ण चित्रण किया है। उसने सामाजिक प्रगति का आधार 'संघर्ष' प्रगति का मार्ग अवरूद्ध करता है। सामाजिक विकास का मार्ग रोककर सामाजिक विघटन को जन्म देता है। इस तरह मार्क्स का यह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण गलत है।

8. **नियतिवाद का समर्थन (Support to Fatalism) –** मार्क्स का मानना है कि मानव–विकास की प्रक्रिया पूर्व – निश्चित है। इस विकास प्रक्रिया में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार मार्क्स ने नियतिवाद का समर्थन किया है। उसके अनुसार संसार की प्रत्येक घटना ऐतिहासिक नियतिवाद का ही परिणाम है। मार्क्स ने 'मानव की स्वतन्त्र इच्छा' की घोर उपेक्षा की है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब मनुष्य ने अपनी स्वतन्त्र इच्छा के बल पर इतिहास की धारा को मोड़ दिया। इस विश्व में प्रत्येक घटना के पीछे नियतिवाद के साथ – साथ मानवीय चेतना का भी हाथ होता है।

इस प्रकार मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की वैज्ञानिकता व पूर्णता को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया सकता है। उसके इस सिद्धान्त में अनेक दोष हैं। इसके लिए स्वंय मार्क्स काफी हद तक दोषी है। हैलोवल ने कहा है – "मार्क्स स्वयं एक गम्भीर दार्शनिक नहीं था, जो कुछ गम्भीरता उसमें है वह सब हीगल के कारण है।" इस तरह सेबाइन तथा वेवर ने भी दर्शनशास्त्र की बजाय राजनीति, कानून तथा अर्थशास्त्र का ज्ञाता माना है। प्रो० हंट ने मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को अवैज्ञानिक कहा है। इस प्रकार निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त न तो मौलिक है और स्पष्ट है। यह अनेक विसंगतियों का कच्चा चिट्ठा है।

लेकिन अनेक दोषों के बावजूद भी राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में सिद्धान्त का विशेष महत्त्व है। मार्क्स ने इस सिद्धान्त के बल पर यह बताया कि मनुष्य की सारी

समस्याएं इहिलौकिक हैं। समाज के कोई भी अवस्था चिर–स्थायी नहीं है और सामाजिक परिवर्तन में भौतिक (आर्थिक) परिस्थितियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण व आधारभूत होती है। इस सिद्धान्त के आधार पर मार्क्स नए समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया और पूंजीवाद के शोषण से मजदूरों को मुक्ति दिलाकर साम्यवादी समाज की स्थापना के स्वप्न देखा। इस सिद्धान्त के आधार पर ही मार्क्स ने यथार्थवादी चिन्तन को एक ठोस व विश्वसनीय आधार प्रदान किया और समाजवादियों ने यह दृढ़ विश्वास पैदा किया कि उनकी विचारधारा पूर्ण वैज्ञानिक है और साम्यवाद की स्थापना अवश्यम्भावी है। इस सिद्धान्त का महत्त्व इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि आगे लेनिन तथा अन्य समाजवादी विचारकों ने मार्क्स की ही विचारधारा को अपने चिन्तन का आधार बनाया और मार्क्स की भविष्यवाणियों की सुरक्षा की।

7.7 ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism)

मार्क्स ने अपने सिद्धान्त 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' (Dialectical Materialism) का प्रयोग ऐतिहासिक व सामाजिक विकास की व्याख्या करने के लिए किया। उसने बताया कि मानव– इतिहास में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों और घटनाओं के पीछे आर्थिक शक्तियों का हाथ होता है। इसलिए उसने अपने 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' के सिद्धान्त के आधार पर इतिहास की व्याख्या को ऐतिहासिक भौतिकवाद या 'इतिहास की भौतिकवादी' व्याख्या (Materialistic Interpretation of History) का नाम दिया, आगे चलकर अनेक विद्वानों ने इस सिद्धान्त को 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या (Economic Interpretation of History), 'आर्थिक नियतिवाद' (Economic Determinism) आदि नामों से भी पुकारा गया। इस प्रकार मार्क्स का यह सिद्धान्त भ्रमजाल में फंस गया।

मार्क्स के अनुसार ऐतिहासिक विकास का निर्णायक तत्व उत्पादन शक्तियाँ हैं। उसके आर्थिक नियतिवाद के अनुसार मनुष्य जो कुछ भी करता है, उसका निर्माण आर्थिक या भौतिक कार्यों द्वारा होता है। मनुष्य आर्थिक शक्तियों का दास है। इस सिद्धान्त के अनुसार मार्क्स ने यह बताया है कि 'इतिहास का निर्धारण अन्तिम रूप

में आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार होता है।" इसके आशीर्वाद से अपने सिद्धान्त को अलग व उलटा रचाने के लिए इसका नाम ऐतिहासिक भौतिकवाद ही रखा।

सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of Theory)

मार्क्स का कहना है कि मनुष्य जाति को राजनीति, धर्म विज्ञान आदि का विकास करने से पहले खाने – पीने की, निवास की और कपड़ों की जरूरत होती है। इसलिए प्रत्येक देश की राजनीतिक संस्थाएं, उसकी सामाजिक व्याख्या, उसके व्यापार और उद्योग, कला, दर्शन, रीतियां, आचरण, परम्पराएँ, नियम, धर्म तथा नैतिकता जीवन की भौतिक आवश्यकताओं द्वारा प्रभावित रूप धारण करती हैं। एंजिल्स के अनुसार "एक निश्चित समय में एक निश्चित जाति में जीवन–निर्वाह के तात्कालिक भौतिक साधनों का उत्पादन एवं आर्थिक विकास की मात्रा एक ऐसी नींव होती है जिस पर जाति की राज्य विषयक संस्थाएं, कानूनी विचार, कला एवं धार्मिक विचारा आधारित होते है।" मार्क्स ने आगे कहा है कि इतिहास की सामाजिक और राजनीतिक क्रान्तियां जीवन की भौतिक अवस्थाओं के कारण होती हैं, सत्य तथा न्याय के अमूर्त विचारों या भगवान की इच्छा के कारण नहीं। जीवन की भौतिक अवस्थाओं से उसका तात्पर्य वातावरण, उत्पादन, वितरण और विनियम से है, और उनमें भी उत्पादन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। मार्क्स ने अपने इस सिद्धान्त को भूत और भविष्य दोनों में क्रान्तियों के लिए किया है। भूतकाल की क्रान्ति सामंतवादियों के खिलाफ बुर्जुआवादियों की थी और भविष्य की क्रान्ति बुर्जुआवादियों (पूंजिपतियों) के विरूद्ध सर्वहारा वर्ग (मजदूर वर्ग) की होगी।

मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद की व्याख्या निम्नलिखित शीषकों के अन्तर्गत की जा सकती है :–

1. **भोजन की आवश्यकता (Need of Food) –** इस सिद्धान्त का मौलिक तत्व यह है कि मनुष्य के जीवन के लिए भोजन पहली आवश्यकता है। उसका जीवित रहना इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने लिए प्राकृतिक साधनों से कितना भोजन प्राप्त करता है। अतः मनुष्य के समस्त क्रिया – कलापों का आधार उत्पादन प्रणाली है और इसी से समाज की रचना होती है।

2. **उत्पादन की शक्तियां (Productive Forces)** – मार्क्स कहता है कि उत्पादन की समस्त शक्तियों में प्राकृतिक साधन, मशीन, यन्त्र, उत्पादन, कला तथा मनुष्यों के मानसिक और नैतिक गुण शामिल है। ये शक्तियां समस्त मानव और सामाजिक इतिहास की निर्धारक हैं। किसी युग की कानूनी और राजनीतिक संस्थाएं सांस्कृतिक उत्पादन के साधनों की उपज है। धार्मिक विश्वासों और दर्शन का आधार भी उत्पादन की शक्तियां ही हैं। एंजिल्स ने कहा है – "इतिहास के प्रत्येक काल में आर्थिक उत्पादन और विनियम की पद्धति तद्जनित सामाजिक संगठन का वह आधार बनाते हैं जिसके ऊपर उसका निर्माण होता है और केवल जिसके द्वारा ही उनके राजनीतिक और बौद्धिक जीवन की व्याख्या की जा सकती है।" इस तरह कहा जा सकता है कि उत्पादन और वितरण की प्रणाली में परिवर्तन होने पर उसके अनुरूप ही सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक संस्थाओं में भी परिवर्तन आते हैं। उत्पादन की शक्तियां ही सामाजिक और राजनीतिक ढांचे का आधार है। इस ढांचे से मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध निर्धारित होतें हैं और यही 'उत्पादन के सम्बन्ध' भी कहलाते हैं। अतः उत्पादन की शक्तियां ही समस्त मानवीय संस्थाओं की रूपरेखा का आधार है। मनुष्यों के समस्त क्रिया – कलाप इसी की परिधि में आते हैं।

3. **परिवर्तनशील उत्पादन (Impact of changing Productive Forces on Social Relations)** – शक्तियों की सामाजिक सम्बन्धों का प्रभाव – मार्क्स का कहना है कि "जीवन के भौतिक साधनों की उत्पादन पद्धति सामाजिक , राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन की समस्त क्रियाओं को निर्धारित करती है।" उत्पादन की शक्तियां सदैव समान न रहकर परिवर्तित होती रहती है और साथ में सामाजिक सम्बन्धों को भी परिवर्तित करती है। यही कारण है कि औद्योगिक क्रान्ति से पहले हस्तचलित यन्त्रों का युग में समाज का स्वरूप सांमतवादी था और औद्योगिक क्रान्ति के बाद वाष्पचलित तथा अन्य ऊर्जाचालित यन्त्रों के प्रयोग के युग में अर्थात मशीनी युग में औद्योगिक पूंजीवादी समाज की स्थापना हुई। मार्क्स का विश्वास है कि यह विकास (उत्पादन शक्तियों का

विकास) सामानान्तर चलता है और यदि यह विकास (उत्पादन शक्तियों का विकास) समान्तर चलते है और यदि कृत्रिम उपायों से इसके रास्तें में रूकावट डालने का कोई प्रयास किया जाता है तो स्वाभाविक रूप से संकट का जन्म होता है। समाजवादी व्यवस्था ऐसे सभी दोषों से मुक्त रहती है। अतः यह बात सही है कि परिवर्तनशील उत्पादन शक्तियां ही सामाजिक सम्बन्धों का नए सिरे से निर्धारण करती हैं।

4. **उत्पादन एवं उत्पादन शक्ति के विकास की द्वन्द्ववाद से प्राप्ति (Dialectical Evolution of Production and Productive Forces)–** मार्क्स का कहना है कि उत्पादन की शक्तियों में तब तक परिवर्तन चलता रहता है जब तक की उत्पादन की सर्वश्रेष्ठ अवस्था नहीं आ जाती। इसी के आधार पर मार्क्स ने पूंजीवाद को समाजवाद की दिशा में ले जाने का प्रयास किया है। इस तरह पुरानी व्यवस्था नष्ट हो जाती है और नवीन व्यवस्था का जन्म होता है। उत्पादन शक्तियों का पूर्णताः की तरफ विकसित व परिवर्तित होने रहना ही सामाजिक परिवर्तन व विकास का आधार है।

5. **आर्थिक व्यवस्था और धर्म (Economy and Religion)–** मार्क्स ने धर्म की आलोचना की है। वह इसका पूर्ण रूप से विरोध करते हुए कहता है कि "धर्म दोषपूर्ण आर्थिक व्यवस्था का परिणाम है और यह अफीम के नशे की तरह है।" यह पूंजीपति वर्ग मजदूर वर्ग को स्वर्गलोक कल्पना कराता है । इससे वे यह अनुभव करते हैं कि एक दिन वे अभावों तथा चिंताओं से मुक्त होकर सुखी जीवन का उपभोग अवश्य करेंगे।

6. **इतिहास की अनिवार्यता में विश्वास (Belief in inevitability of History)** – मार्क्स इतिहास की अनिवार्यता में विश्वास करते हुए कहता है कि "उत्पादन की शक्तियों के अनुकूल जिस प्रकार के उत्पादन सम्बन्धों की आवश्यकता होगी, वे अवश्य की अवतरित होंगे। मनुष्य केवल उनके आने में देरी करता है या उन्हें शीघ्रता से ला सकता है, स्थायी रूप से रोक नहीं सकता।" इस तरह मार्क्स परिवर्तनों को अवश्यम्भावी मानता है और मनुष्य के नियन्त्रण से बाहर की बात स्वीकार करता है।

7. **इतिहास का काल विभाजन (Division of Periods of History)** – मार्क्स ने उत्पादन के सम्बन्धों या आर्थिक दशाओं के आधार पर इतिहास को निम्नलिखित युगों में बांटा है –

(क) आदिम साम्यवाद का युग अथवा प्राचीन साम्यवाद(Primitive Communism)

(ख) दासत्व युग अथवा समाज (Slave Society),

(ग) सामन्तवादी युग अथवा समाज (Fedual Society),

(घ) पूंजीवादी युग अथवा समाज (Capitalistic Society),

(ङ) समाजवादी युग अथवा समाज (Socialistic Society),

(च) साम्यवादी युग अथवा समाज (Communist Society),

(क) **आदिम साम्यवाद का युग अथवा प्रीचन साम्यवाद(Primitive Communism)** – यह युग इतिहास का प्रारम्भिक काल है। इस युग में मानव की आवश्यकताएं अत्यन्त सीमित थी। वह फल – फूल खाकर अपनी भूख मिटा लेता था। इस युग में कोई वर्ग संघर्ष नहीं था। इस युग में व्यक्तिगत सम्पत्ति का अभाव था। उत्पादन के साधनों पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार नहीं था। समाज शोषक और शोषित वर्गों में नहीं बंटा हुआ था। संयुक्त श्रम के कारण उत्पादन की शक्तियों पर सबका अधिकार था। सभी कार्य व्यक्ति द्वारा सामूहिक रूप से किए जाते थे। सभी व्यक्ति सहयोग व समानता के सिद्धान्त का पालन करते थे। इस युग में कोई विषमता नहीं थी। लेकिन यह व्यवस्था अधिक दिन तक नहीं चली।

(ख) **दासत्व युग अथवा समाज (Slave Society) –** व्यक्तिगत सम्पत्ति के उदय ने आदिम साम्यवाद को समाप्त कर दिया और उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व होने के कारण दास – युग का प्रारम्भ हुआ। अब व्यक्ति के शिकार के स्थान पर खेती करने लगा और पशु पालने लग गया। इस युग में शक्तिशाली व्यक्ति उत्पादन के साधनों पर अधिकार जताने लगे और कमजोर व्यक्ति उनके अधीन हो गए। इससे समाज के स्वामी और दास दो वर्ग बन गए। उत्पादन के साधनों पर जिसका कब्जा होता था वह स्वामी तथा उत्पादन के साधनों से वंचित व्यक्ति दास बन गए। स्वामी दासों के श्रम का इच्छानुसार प्रयोग करने लग गए।

स्वामी बड़ी कठोरता व निर्दयता से दासों का शोषण करने लग गए। दासों पर स्वामियों का पूरा अधिकार होता था। जैसे – जैसे स्वामियों के पास आर्थिक शक्ति बढ़ गई वैसे ही दास प्रथा भी कुरूप होती गई, दासों के अधिक शोषण से दासों में विद्रोह की भावना का जन्म हुआ और विद्रोह को कुचलने के लिए उत्पीड़न के नए साधन राज्य का जन्म हुआ। राज्य ने शोषक वर्ग के ही हितों को सूरक्षित बनाया। इस युग में वर्ग – संघर्ष का जन्म हुआ, अपनी चरम सीमा पर पहुंचकर दास – प्रणाली अपने अन्तर्विरोधों के कारण नष्ट होने लगी और उसके स्थान पर सामंतवादी प्रणाली का जन्म हुआ।

(ग) **सामन्तवादी युग अथवा समाज (Fedual Society) –** दास – युग की समापत्ति के बाद मानव समाज ने सामन्वादी युग में प्रवेश किया। इस युग में आजीविका का प्रमुख साधन कृषि था। इस युग में समस्त भूमि राजा के अधीन थी। राजा ने भूमि को अपने सामन्तों में बांटा हुआ थे। ये सामंत आवश्यकता पड़ने पर राजा की हर तरह से मदद करते थे। ये सामंत कुलीन व्यक्ति थे। इन्होंने भूमि को छोटे – छोटे किसानों में बांट रखा था। किसानों पर सामन्तों का नियंत्रण था। किसान सांमतों को ही अपने स्वामी मानते थे इस युग में उत्पादन के साधनों पर सामंतों तथा शासक वर्ग का अधिकार था। इस युग में छोटे – छोटे उद्योगों का जन्म भी हो चुका था। कानून और धर्म सामन्तों तथा शासक वर्ग के हितों के ही पोषक थे। इस युग में किसानों का अत्यधिक शोषण होता था और उनकी दशा दासों की तरह थी।

(घ) पूंजीवादी युग अथवा समाज (Capitalistic Society) – मध्य युग की समापत्ति पर सामन्त युग की उत्पादक शक्तियों तथा उत्पादन – सम्बन्धों के विरूद्ध आवाज उठानी शुरू कर दी। नगरों में व्यापारी वर्ग ने नए – नए आविष्कारों का लाभ उठाकर उत्पादन प्रणाली में आश्चर्यजनक परिवर्तन किए और उद्योगों का तेजी से विकास होने लगा। कोयले और भांप की शक्ति के आविष्कार ने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। अब कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था का स्थान उद्योगों ने लेना शुरू कर दिया। अब पूंजीपतियों ने अपने उत्पादन को बढ़ाने के लिए श्रमिकों का सहारा लेना शुरू किया और उन्हें कम वेतन देकर उनका शोषण करना शुरू कर दिया। इस तरह औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप समाज दो वर्गों पूंजीपति तथा श्रमिक वर्ग

में बंट गया। सामाजिक समबन्धों में आए नवीन परिवर्तनों से वर्ग – संघर्ष उग्र होने लग गया। ऐसा संघर्ष आज भी विद्यमान है। पूंजीपतियों द्वारा श्रमिक वर्ग का शोषण कोई नई बात नहीं है। उनका शोषण लम्बे समय से होता आ रहा है। आज भी श्रमिक वर्ग पूंजीपति वर्ग के शोषण का शिकार है।

(ङ) **समाजवादी युग अथवा समाज (Socialistic Society)** – श्रमिकों का अत्यधिक शोषण श्रमिकों को संगठित होने के लिए बाध्य करता है और विद्यमान व्यवस्था के खिलाफ क्रान्ति करने के लिए प्रेरित करता है। रूस की 1917 की क्रान्ति द्वार जार की तानाशाही का अन्त करना तथा सर्वहारा वर्ग की तानाशाही स्थापित होना इसका प्रमुख उदाहरण है। पूंजीपति वर्ग द्वारा दिए गए कष्टों से छुटकारा पाने के लिए क्रान्ति के सिवाय अन्य कोई उपाय श्रमिकों के पास नहीं है। यद्यपि यह क्रान्ति चीन और रूस मं ही आई है। विश्व के अनेक पूंजीवादी देश आज भी बेहिचक श्रमिकों का शोषण कर रहे हैं। मार्क्स का विश्वास था कि पूंजिवाद में ही अनेक विनाश के बीज निहित हैं। इसका विनाश अवश्यम्भावी है। इसके अन्त पर ही नए समाज व सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना होगी जो अगले चरण में पूर्ण साम्यवाद का रूप ले लेगा।

(च) **साम्यवादी युग अथवा समाज (Communist Society) –** सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति के बाद उत्पादन के साधनों पर सर्वहारा वर्गका अधिनायकत्व स्थापित होगा और संक्रमणशील अवस्था से गुजरने के बाद समाजवादी व्यवस्था पूर्ण साम्यवाद का स्थान ले लगी। इसे राज्यविहिन समाज की स्थिति प्रकट होगी। समाज में पूर्ण समानता और साम्य का साम्राज्य स्थापित होगा। पूंजीपति वर्ग बिल्कुल लुप्त हो जाएगा और समाज में श्रमजीवियों का वर्ग ही शेष बचेगा। विरोधी वर्ग के अभाव में वर्ग संघर्ष भी समाप्त हो जाएगा। शोषण के सभी साधन भी लुप्त हो जाएंगे। इससे आदर्श समाज की अवस्था आएगी। मार्क्स ने इस व्यवस्था की दो विशेषताएं बताई हैं –

(i) यह अवस्था वर्ग – विहीन होगी। इसमें शोषक व शोषित दो वर्ग न होकर उत्पादन के साधनों का स्वामी बहुसंख्यक वर्ग श्रमिक वर्ग या सर्वहारा वर्ग होगा। राजनीतिक शक्ति के प्रयोग की अवश्यकता न रहने पर राज्य नाम की संस्था का

स्वयं लोप हो जाएगा। क्योंकि राज्य पूंजीपति वर्ग के शोषण का प्रभावशाली साधन होता है। श्रमिक वर्ग को इसकी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

(ii) इस अवस्था में 'सामाजिक संसाधनों के वितरण का सिद्धान्त' लागू होगा अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करेगा और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं हो जाएगी।

8. **मानव – इतिहास की कुंजी वर्ग–संघर्ष है (ClassStruglle is the key to Human History)** – मार्क्स का मानना है कि मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। प्रत्येक युग में परस्पर विरोधी दो वर्ग रहे हैं। दास – युग में स्वामी और दास, सामन्तवादी युग में किसान और सामंत तथा पूंजीपति वर्ग (बुजुर्आ वर्ग) तथा श्रमिक वर्ग (सर्वहारा वर्ग) का अस्तित्व रहा है। इन दोनों वर्गों के हित अलग – अलग होने के कारण वर्ग – संघर्ष (Class - Struggle) का जन्म होता है। यही वर्ग संघर्ष समाज में परिवर्तन तथा विकास का प्रेरक तत्त्व है। मार्क्स का मानना है कि इसी वर्ग – संघर्ष के कारण अन्ततः समाजवाद की स्थापना होगी और सामाजिक सम्बन्धों का निर्धारण नए सिरे से होगी। उस अवस्था में समाज शोषण मुक्त होगा। उसमें समानता तथा साम्यवाद का सिद्धान्त पूर्ण रूप से अपना कार्य करेगा।

मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धान्त के निहितार्थ

(Impliations of Marxist Theory of Historical Materialism)

1. किसी समाज के विकास की प्रक्रिया में आर्थिक तत्त्वों की भूमिका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। इतिहास का अध्ययन मानव– समाज के विकास के नियम जानने के लिए किया जाता है।
2. प्रकृति के विकास के नियमों की तरह समाज के विकास के भी कुछ वैज्ञानिक नियम है।
3. उत्पादक – शक्तियों में परिवर्तन से उत्पादकीय सम्बन्धों में भी परिवर्तन हो जाता है।

4. प्रत्येक युग की सम्पर्क सामाजिक व्यवस्था पर आधिप्त उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व वाले वर्ग का ही होता है।
5. सामाजिक जीवन के परिवर्तन आर्थिक शक्तियों के कारण होते हैं। इनके पीछे किसी ईश्वरीय इच्छा या संयोग का कोई हाथ नहीं होता है।
6. वर्ग – संघर्ष सामाजिक विकास की कुंजी है और दास – युग से लेकर सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद तक वर्ग – संघर्ष ने ही सामाजिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन किए हैं। लेकिन साम्यवादी युग की स्थापना पर इस वर्ग – संघर्ष की प्रक्रिया का अन्त हो जाएगा।
7. इतिहास की आर्थिक व्याख्या के माध्यम से मार्क्स पूंजीवाद के अन्त तथा साम्यवाद के आगमन की अनिवार्यता व्यक्त करता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद की आलोचना

मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त अनेक आलोचनाओं का शिकार हुआ है। इसकी आलोचना के आधार निम्नलिखित है :–

1. **मानव इतिहास के विकास में केवल आर्थिक तत्व ही निर्धारक नहीं (Economic Factor is not the only determinant of Human History)**– मार्क्स ने आर्थिक तत्वों को मानव समाज की निर्धारक मानने की भारी भूल की है। मानव इतिहास के विकास में धर्म, दर्शन, राजनीति, नैतिकता आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इसके अतिरिक्त जलवायु, न्याय की इच्छा, विवेक, लाभ तथा मानव की महत्त्वकांक्षाएं, भावनाएं, अभिलाक्षाएं भी मानवीय क्रियाओं में प्रभावी रही है। जातीय पक्षपात, षड़यन्त्र, अन्धविश्वास, लौंगिक इच्छा, लौंगिक आर्कषण, अधिकार, नाम तथा प्रसिद्धि की लिप्साओं पर मार्क्स का सिद्धान्त प्रकाश नहीं डालता। संसार से संघर्षों का कारण आर्थिक तत्त्व ही नहीं रहे हैं। इनके पीछे और आर्थिक तत्त्वों ईर्ष्या, प्रदर्शन की इच्छा, शक्ति और सत्ता का प्रेम आदि का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

2. **राजनीतिक सत्ता का एकमात्र आधार आर्थिक सत्ता नहीं है (Economic Power is not the only basis for Political Power)**– मार्क्स का मानना है कि समाज में जिस वर्ग का उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व होता है, समाज की सत्ता पर भी उसका ही अधिकार होता है। पूंजीवादी अवस्था में तो यह ठीक है लेकिन हार अवस्था में संभव नहीं हो सकता। प्राचीन भारत में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के पास राजनीतिक सत्ता अत्यधिक थी, फिर भी दे आर्थिक सत्ता से अभावग्रस्त थे। मध्ययुग में पोप की शक्ति का आधार आर्थिक स्वामित्व पर निर्भर नहीं था। वर्तमान युग में कर्मचारी वर्ग का महत्त्व आर्थिक सत्ता के कारण न होकर उनकी मानसिक शक्ति के कारण है। अतः सदैव आर्थिक सत्ता ही राजनीतिक सत्ता का आधार नहीं होती।

3. **दैवीय व संयोग तत्वों की उपेक्षा (Negligence of Godly and Coincidental Incidents)**– मार्क्स ने अपने इस सिद्धान्त में संयोग तत्व की घोर उपेक्षा की है। न्यूटन ने संयोगवश ही सेब को पेड़ गिरते देखकर गुरूत्वाकर्षण का नियम प्रतिपादित किया था। एक दुःखी व्यक्ति को देखकर ही महात्मा बुद्ध का सारा जीवन दर्शन ही बदल गया। नेपोलियन कभी भी ख्याति प्राप्त नहीं कर सकता था। यदि जिनोआ ने 1768 में कोर्सिका को फ्रांस को न सौंपा होता। नेपोलियन फ्रांस के स्थान पर इटली का नागरिक होता। 1917 में यदि जर्मनी की सरकार लेनिन को वापिस रूस लौटाने की आज्ञा नहीं देती तो बोल्शेविक क्रान्ति नहीं होती। वर्तमान समय की संगठनात्मक प्रणाली आकस्मिक घटनाओं का परिणाम हे। इस प्रकार मानव इतिहास में परिवर्तन व विकास आकस्मिक कारणों से होते हैं, आर्थिक कारणों से नहीं।

4. **आर्थिक तत्त्व ही संघर्ष का एकमात्र कारण नहीं है (Economic factors are not the only cause of struggle)**– मार्क्स का कहना है कि आज तक का इतिहास उत्पादन शक्तियों में होने वाले संघर्ष का परिणाम है। लेकिन सत्य तो यह है कि युद्ध केवल आर्थिक कारणों से ही नहीं हुए हैं। महाभारत का युद्ध, रावण पर राम का आक्रमण, आर्थिक प्रेरणाओं से युक्त नहीं थे। इनके पीछे मनोवैज्ञानिक तत्वों–ईर्ष्या, द्वेष, बदला, पाप का नाश करने व धर्म की रक्षा

करने की भावना आदि बलशाली थी। सिकन्दर द्वारा भारत पर आक्रमण के पीछे उसकी विश्व विजय की महत्त्वाकांक्षा थी। दो महाशक्तियों में लम्बे समय तक चलने वाला शीतयुद्ध विचारधाओं का संघर्ष था, ब्रटेंड रसल ने कहा है – "हमारे राजनीतिक जीवन की बड़ी – बड़ी घटनाओं का निर्धारण भौतिक अवस्थाओं और मानवीय भावनाओं की पारस्परिक क्रियाओं के द्वारा होता है।" अतः संघर्षों के पीछे आर्थिक तत्त्वों के साथ गैर–आर्थिक तत्त्वों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

5. **उत्पादन प्रणाली ही विचार को जन्म नहीं देती, विचार भी उत्पादन प्रणाली को जन्म देते हैं (Not only Economic system forms ideas but ideas also form economic system) –** मार्क्स के इन सिद्धान्त को अनुसार उत्पादन प्रणाली ही विचार ही जन्मदाता है। जबकि सत्य तो यह है कि विचार भी उत्पादन प्रणाली को जन्म देते हैं। उदाहरणतः सोवियत प्रणाली, जो 1917 की क्रान्ति के बाद स्थापित की गई, साम्यवादी सिद्धान्त की उपज है। फासिस्ट प्राणी फासिस्ट सिद्धान्त जो इटली में मुसोलिनी ने पेश किया था, की उपज है। नाजीवादी प्रणाली जर्मनी में हिटलर के नाजीवाद की देन है। अतः विचार भी उत्पादन प्रणाली की जननी होते हैं।

6. **मनवीय इतिहास के कालक्रम का निर्धारण संभव नही है (Determination of time period of human history is impossible)–** मार्क्स ने अपनी आर्थिक व्याख्या के अन्तर्गत इतिहास का काल विभाजन – दास युग, सामन्तवादी युग, पूंजीवादी युग, सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व और साम्यवादी युग में किया है। उसका यह काल विभाजन गलत है। यह आवश्यक नहीं है कि सर्वहारा वर्ग का अधिनायक पूंजीवाद के पूर्ण विकास के बाद ही आए। रूस में 1917 की क्रान्ति से पहले वहां पूंजीवाद न होकर कृषि प्रधान राज्य था। इसी तरह चीन सर्वहारा क्रान्ति से पूर्व कोई औद्योगिक दृष्टि से विकसित राष्ट्र नहीं था। अतः मार्क्स का काल विभाजन तार्किक दृष्टि से गलत है।

7. **राज्य–विहीन समाज का विचार गलत है (Idea of stateless society is wrong)** – मार्क्स का यह सोचना गलत है कि इतिहास का विकास क्रम राज्यविहिन समाज पर आकर रूक जाएगा। क्या साम्यवादी युग में पदार्थ का अन्तर्निहित गुण 'गतिशीलता' समाप्त हो जाएगा। यदि गतिशीलता का पदार्थ का स्वाभाविक गुण है तो उसमें साम्यवादी अवस्था में भी अवश्य ही परिवर्तन होगा। उत्पादन के साधन बदलेंगे, सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन आएगा तथा वर्गविहीन समाज का प्रतिवाद उत्पन्न होकर साम्यवाद को भी नष्ट कर देगा। अतः मार्क्स का 'गतिशीलता का सिद्धान्त' साम्यवाद के ऊपर आकर रूक जाएगा, तर्कसंगत व वैज्ञानिक नहीं हो सकता।

8. **सार्वभौमिकता का अभाव (Lack of universalization)** – एक दार्शनिकतावादी सिद्धान्त के रूप में इतिहास की आर्थिक व्याख्या सारे संसार पर व हर क्षेत्र में लागू नहीं हो सकती। लॉस्की के अनुसार – "आर्थिक पृष्ठभूमि पर सारा वर्णन करने का आग्रह मूलतः मिथ्या है।" उसने कहा है कि बाल्कान राष्ट्रवाद का केवल मात्र आर्थिक पृष्ठभूमि के आधार पर वर्णन नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त मानव जीवन के समस्त पहलुओं को आर्थिक तत्व द्वारा प्रभावित मानना सर्वथा गलत है। आर्थिक तत्व मानवीय मामलों को प्रभावित तो कर सकता है, लेकिन उनका निर्धारण नहीं।

9. **अवैज्ञानिकता (Unscientific)**– मार्क्स ने इस सिद्धान्त को गम्भीर अनुशीलन व वैज्ञानिक अध्ययन करके नहीं निकाला है। उसने हीगल को द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के आधार पर ही इसकी कल्पना की है। उसने पूंजीवाद के नाश के उद्देश्य से इस सिद्धान्त के वैज्ञानिक नियमों की ओर ध्यान नहीं दिया है। उसने दृष्टांत तो बहुत दिए हैं, लेकिन वैज्ञानिक प्रमाणों का इस सिद्धान्त में सर्वथा अभाव है। स्वयं ऐंजिल्स भी मार्क्स की अवैज्ञानिकता को स्वीकार करता है। उतावलेपन के कारण मार्क्स ने इस सिद्धान्त को भ्रमपूर्ण बना दिया है। मार्क्स स्वयं पदार्थ में गतिशीलता की बात करता है और स्वयं ही साम्यवादी व्यवस्था में वर्ग–संघर्ष की समापत्ति की बात करके गतिशीलता के सिद्धान्त का विरोधी

बन जाता है। अतः अन्तर्विरोधों से ग्रस्त होने के कारण यह सिद्धान्त भ्रांतिपूर्ण है।

यद्यपि मार्क्स के इस सिद्धान्त की काफी आलोचना हुई है। आलोचना के कुछ ठोस आधार भी हैं। लेकिन इस सिद्धान्त की पूर्ण उपेक्षा करना मार्क्सकी महत्त्वपूर्ण देन की उपेक्षा करना है। जोड ने कहा है कि इस सिद्धान्त ने मार्क्स को अन्य किसी भी सिद्धान्त से अधिक प्रसिद्धि प्रदान की है। मार्क्स ने सर्वप्रथम इतिहास के क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक अध्ययन की परम्परा की नींव रखी है। चाहे हम मार्क्स द्वारा प्रस्तुत की गई इतिहास की व्याख्या से सहमत न हों, लेकिन यह बात तो सत्य है कि इतिहास किसी दैवीय इच्छा की अभिव्यक्ति नहीं है। आज यह स्वीकार किया जाता है कि सारे इतिहास की मुख्यधारा में एक क्रमबद्धता अवश्य है और इसलिए सामाजिक विकास के नियम भी अवश्य हैं, चाहे ये नियम मार्क्स के नियमों से अलग हों। मार्क्स ने लम्बे समय से चली आ रही सामाजिक जीवन के अध्ययन की धर्म – प्रधान एवं मध्ययुगीन अध्ययन अध्ययन प्रणाली का पूर्ण अन्त कर दिया है और समाजशास्त्रों को एक नई गति व दिशा प्रदान की है। हण्ट ने कहा है – "सामजशास्त्रों के सभी आधुनिक लेखक मार्क्स के प्रति ऋणी हैं, यद्यपि वे इसे स्वीकार नहीं करते।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि मार्क्स ने आर्थिक कारकों पर जोर देकर सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में एक नया कदम रखा है। इस बात से पूर्णतयाः इन्कार नहीं किया जा सकता कि आर्थिक शक्ति राजनीतिक शक्ति की नियात्मक नहीं है। आर्थिक तत्त्व की उपेक्षा करके इतिहास का निष्पक्ष अध्ययन करना असम्भव है। अतः मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त उसकी एक महत्त्वपूर्ण देन है।

7.8 वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त (Theory of Class - Struggle)

मार्क्स की वर्ग – संघर्ष की धारणा उसके चिन्तन की एक महत्त्वपूर्ण धारणा है। मार्क्स ने इतिहास की प्रेरक शक्ति भौतिक है। उसका मानना है कि उत्पादन प्रक्रिया के मानव सम्बन्ध इतिहास का निर्माण करते हैं। उत्पादन प्रक्रिया धनी और निर्धन (Haves and Have nots) दो वर्गों को जन्म देती है। प्रत्येक वर्ग एक दूसरे से

संघर्ष करता रहता है। यही समाज की प्रगति का आधार है। इस तरह मार्क्स का वर्ग – संघर्ष का सिद्धान्त जन्म लेता है। उसकी यह धारणा इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या तथा अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त पर आधारित है। उसने ऐतिहासिक भौतिकवाद की सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं के आधार पर साम्यवादी घोषणापत्र (Communist Manifesto) में कहा है कि – "आज तक का सामाजिक जीवन का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।" सेबाइन ने भी उसकी पृष्टि करते हुए कहा है कि मार्क्स वर्ग – संघर्ष को ही सामाजिक परिवर्तन का माध्यम मानता है।

मार्क्स ने अपनी वर्ग – संघर्ष की धारणा 'आंगिस्टन थोर' के दर्शन से ली है। इसलिए उसकी यह धारणा मौलिक नहीं है। फिर भी मार्क्स ने उसे एक व्यवस्थित व प्रामाणिक आधार प्रदान करके उसे विश्व राजनीतिक का प्रमुख तत्व बना दिया है। उसने वर्ग – संघर्ष की धारणा को तत्कालीन इंगलैण्ड की तत्कालीन सामाजिक – आर्थिक परिस्थितियों पर आधारित किया है। उस समय इंग्लैण्ड में उत्पादन में अत्याधिक वृद्धि हो रही थी। पूंजीपति वर्ग दिन – प्रतिदिन अमीर होता जा रहा था और श्रमिक वर्ग निरन्तर निर्धर हो रहा था। श्रमिक वर्ग में वर्ग – चेतना का विकास हो रहा था और वह पूंजीपति वर्ग के शोषण को रोकने के लिए संगठित रूप में संघों का निर्माण कर रहा था। मार्क्स ने पूंजीपति वर्ग के अत्याचार व अन्याय से दुःखी श्रमिक वर्ग के कष्टों को देखकर एक कल्पना के आधार पर वर्ग – संघर्ष की धारणा का निर्माण किया और कल्पना के ही आधार पर पूंजीवादी समाज के अन्त तथा समाजवाद के उदय का स्वप्न देखा जो शोषण मुक्त समाज का प्रतिबिम्ब होगा।

वर्ग संघर्ष का अर्थ (Meaning of Class - Struggle)

मार्क्स ने वर्ग – संघर्ष की धारणा का उल्लेख अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'साम्यवादी घोषणापत्र' (Communist Manifesto) में किया है। उसने 'वर्ग' शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थों में किया है। बुखिारिन ने वर्ग को परिभाषित करते हुए कहा है – "सामाजिक वर्ग व्यक्तियों के उस समूह को कहते हैं जो उत्पादन की प्रक्रिया में एक हिस्सा

अदा करते हैं और उत्पादन की प्रक्रिया में लिप्त दूसरे व्यक्तियों के साथ एक ही सम्बन्ध रखते हैं।" मार्क्स के अनुसार, "व्यक्तियों का वह समूह वर्ग है, जो अपने साधारण हितों की पूर्ति हेतु उत्पादन की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है।" अर्थात् जिस समूह के आर्थिक हित एक – से होते हैं, उसको वर्ग कहा जाता है। मार्क्स का कहना है कि समाज में सदैव ही दो वर्ग रहे हैं, जैसे स्वामी – दास, किसान – जमींदार, पूंजीपति – श्रमिक। संघर्ष को परिभाषित करते हुए मार्क्स ने कहा है कि संघर्ष का अर्थ केवल लड़ाई नहीं है बल्कि इसका व्यापक अर्थ है – रोष, अंसतोष तथा आंशिक असहयोग। जब यह कहा जाता है कि वर्गों में अनादिकाल से सदैव संघर्ष होता रहा है तो इसका अभिप्राय यह होता है कि सामान्य रूप से असन्तोष और रोष की भावना धीरे –धीरे शान्तिपूर्ण रीति से सुलगती रहती है और कुछ ही अवसरों पर यह भीषण ज्वाला का रूप ग्रहण कर लेती है।

वर्ग – संघर्ष सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of the Theory of Class - Struggle)

मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या करके यह नियम बनाया कि आज तक का संसार का इतिहास वर्ग – संघर्ष का इतिहास है। विश्व इतिहास अर्थिक और राजनीतिक शक्ति के लिए विरोधी वर्गों में संघर्षों की श्रृंखला है। प्रत्येक काल और प्रत्येक देश में आर्थिक और राजनीति सत्ता की प्राप्ति के लिए किए गए संघर्ष इतिहास का अंग बन गए है। मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' में लिखा है – "प्राचीन रोम में कुलीन, सरदार, साधारण मनुष्य तथा दास होते थे। मध्य युग में सामन्त, सरदार तथा जागीरदार, संघ स्वामी, कामदार, अपरेन्टिस तथा सेवक होते थे। प्रायः इन समस्त वर्गों में इनकी उपश्रेणियां भी होती थी। ये समूह दमन करने वाले तथा दलित निरन्तर एक दूसरे का विरोध करते थे। इनमें कभी खुलकर तथा कभी छिपकर निरन्तर संघर्ष चलता रहता था। प्रत्येक समय युद्ध के परिणामस्वरूप दोनों वर्ग नष्ट हो तो थे।" इस तरह समाज में युगों से दो वर्गों का अस्तित्व रहा है और उनमें संघर्ष भी निरन्तर होता रहा है। प्रत्येक वर्ग अपने हितों की पूर्ति के लिए संघर्ष के उपाय पर ही आश्रित रहा है। ऐसा वर्ग – संघर्ष आज भी पाया जाता है। आज यह संघर्ष अमीर – गरीब के बीच में है। आज उत्तर के

विकसित देश दक्षिण के अविकसित देशों का शोषण कर रहे हैं और दोनों में विभाजन की खाई निरन्तर चौड़ी हो रही हैं आज अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर उत्तर – दक्षिण मतभेद वर्ग – संघर्ष का ही नमूना है।

मार्क्स ने वर्ग – संघर्ष के सिद्धान्त को ऐतिहासिक आधार पर प्रमाणित करने के लिए, आदम युग से आज तक मानव सभ्यता के विकास पर नजर डाली है। मार्क्स कहता है कि आदिम युग में मानव की आवश्यकताएं सीमित थी और वह कन्द, फल खाकर अपना गुजारा करता था। उस युग में व्यक्तिगत सम्पत्ति का लोप था। प्रत्येक वस्तु पर सांझा अधिकार था। सभी व्यक्ति प्रेम – भाव से रहते थे। आदिम साम्यवादी अवस्था थी। लेकिन यह व्यवस्था अधिक दिन तक नहीं चली । इसका स्थान दास – समाज ने ले लिया, इस युग में उत्पादन के साधनों पर शक्तिशाली व्यक्तियों का अधिकार हो गया और वे स्वामी कहलाए। कमजोर व्यक्ति दास कहलाए जाने लगे। व्यक्तिगत सम्पत्ति के उदय ने समाज में वर्ग – संघर्ष को जन्म दिया। इस काल में समाज में दो वर्गों दासों व स्वामियों में संघर्ष तीव्र हो गया। स्वामी दासों का शोषण करने लग गए। इस युग में उत्पादन का प्रमुख साधन कृषि था। जब कृषि के साथ पशु – पालन भी शुरू हुआ तो सामन्तवादी युग का जन्म हुआ। इस युग में जनसंख्या बढ़ने से कृषि योग्य भूमि का भी विस्तार हुआ। अब सामन्त वर्ग ने सारी भूमि राजा से प्राप्त कर ली और उसके बदले राजा को हर सम्भव सैनिक व आर्थिक मदद देने का वचन दिया। इस तरह भूमि पर गिने चुने धनी व्यक्तियों का स्वामित्व हो गया और जनता का अधिकांश हिस्सा शोषित किसान वर्ग बन गया। जमींदारों (सामन्तों) ने किसानों का जमकर शोषण किया। उनकी दशा दासों के समान थी। लेकिन छोटे – मोटे उद्योग धन्धों की शुरूआत ने सांमतवादी व्यवस्था का भी अन्त कर दिया।

इसके बाद विज्ञान के आविष्कारों के परिणामस्वरूप उद्योगों के क्षेत्र में तीव्र उन्नति होने लगी और उद्योग धन्धों के विकास से समाज में पूंजीपति व श्रमिक दो वर्ग बन गए। जिनका उद्योगों पर पूर्ण नियन्त्रण था वे पूंजीपति कहलाए और जो कारखानों में काम करते थे, श्रमिक कहलाए। आज का संघर्ष पूंजीपति वर्ग व श्रमिक वर्ग का

संघर्ष है। आज का युग पूंजीवाद का युग है। आज संघर्ष पहले की तुलना में आसान हो गया है। आज पूंजीवाद गुट व श्रमिक गुट एक – दूसरे के सामने पूरे जोर से डटे हुए है। यह संघर्ष पश्चिमी सभ्यता की देन है। मार्क्स ने इस संघर्ष का गहन विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाला है कि पूंजीपति वर्ग अधिक से अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से श्रमिक वर्ग का शोषण करता है। श्रमिकों को मजदूरी कम दी जाती है और काम अधिक लिया जाता है। श्रमिक वर्ग अपने श्रम की पूरी मजदूरी प्राप्त करना चाहता है। इस तरह दोनों के हितों में टकराव होने लग जाता है। इस संघर्ष में श्रमिक वर्ग की स्थिति कमजोर होती है। श्रमिक को अपना तथा अपने परिवार का पेट भरने के लिए श्रम को सस्ते दामों पर बेचना पड़ता है। वह श्रम को अधिक दिन तक रोक नहीं सकता क्योंकि श्रम एक नाशवान वस्तु है। यदि वह श्रम को रोकता है तो उसे भूखा मरना पड़ता है। उसकी इस मजबूरी से पूंजीपति वर्ग भली – भांति जानता है। इसलिए वह उसे कम मजदूरी देकर उसका शोषण करता है। अतः श्रमिक पूंजीपति वर्ग के आगे झुक जाते हैं और पूंजीपति वर्ग कम वेतन पर उनसे काम कराता है। उनके श्रम का शोषण करके पूंजीपति वर्ग विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। पूंजीपति वर्ग अपनी आर्थिक शक्ति के बल पर राजनीतिक सत्ता पर भी नियन्त्रण कर लेते है। धर्म जैसे सामाजिक वस्तु पर भी उनका ही वर्चस्व स्थापित हो जाता है। धर्म तथा राजनीतिक सत्ता का प्रयोग पूंजीपति वर्ग श्रमिक वर्ग का शोषण करने के लिए करता है। इस शाषण से मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय वर्ग – चेतना है। जब श्रमिक वर्ग पूंजीपति वर्ग के संगठित अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाने लगाता है तो क्रान्ति होती है। लेकिन उचित उपायों के अभावों में प्रायः श्रमिक वर्ग अपनी राजनीतिक शक्ति के बल पर या धर्म का भय दिखाकर इस क्रान्ति या विद्रोह को दबा देता है। ऐसी क्रान्ति कभी – कभार ही सफल होती है। जब यह सफल होती है तो समाज में महान परिवर्तन होते हैं। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सम्बन्धों की पुर्नस्थापना होती है। श्रमिक वर्ग का अधिनायवाद स्थापित होता है और कालांतर में शोषण मुक्त साम्यवादी समाज की रचना होती है। 1917 की रूस की तथा चीन की क्रान्ति इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

मार्क्स का कहना है कि एक दिन पूंजीपतियों और श्रमिकों के संघर्ष में अन्तिम विजय श्रमिकों की होगी क्योंकि पूंजीवाद में उसके विनाश के बीज निहित हैं, मार्क्स ने पूंजीवाद के विनाश के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा है –

1. **पूंजीवाद में व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से उत्पादन –** पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन समाज के हित और उपभोग को ध्यान में न रखकर विशेष रूप से व्यक्तिगत लाभ के लिए होता है जिसके कारण समाज की मांग और उत्पादित माल (पूर्ति) में सन्तुलन खराब हो जाता है।
2. **पूंजीवाद में विशाल उत्पादन तथा स्वाधिकार की ओर प्रवृति** – पूंजीवाद व्यवस्था में बड़े पैमाने पर उत्पादन एवं एकाधिकार की प्रवृति पाई जाती है। जिसके कारण थोड़े – से व्यक्तियों के हाथों में पूंजी आ जाती है और श्रमिकों की संख्या बढ़ती जाती है। इस तरह पूंजीपति वर्ग अपने विनाश के लिए संघर्ष श्रमजीवी वर्ग को शक्ति प्रदान करता है।
3. **अतिरिक्त मूल्य पर पूंजीतियों का अधिकार –** मार्क्स का कहना है कि पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ कमाना होता है। इसलिए अतिरिक्त मूल्य को पूंजीपति श्रमिकों को न देकर अपने पास रख लेते हैं। जबकि न्याय सिद्धान्त की दृष्टि से इस पर श्रमिक का हक बनता है। यह अतिरिक्त मूल्य वह मूल्य है जो श्रमिक द्वारा उत्पादित माल की वास्तविक कीमत और उस वस्तु की बाजार कीमत (Market Price) के मूल्य का अन्तर होता है। पूंजीपति इस अतिरिक्त मूल्य को अपनी जेब में रख लेता है। उससे श्रमिकों का शोषण होता है।
4. **पूंजीवाद आर्थिक संकटों का जन्मदाता है –** मार्क्स कहता है कि पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली समय – समय पर आर्थिक संकटों को जन्म देती है प्रायः उत्पादन श्रमिक वर्ग की क्रय शक्ति से अधिक हो जाता है। तब लाभ की कोई आशा न रहने से पूंजीपति उत्पादित माल को नष्ट करके माल का कृत्रिम अभाव उत्पन्न करते हैं और इस तरह अस्थायी संकटों को जन्म देते हैं। पूंजीवाद की इस प्रवृति के कारण श्रमिक वर्ग एवं सामान्य जनता में घोर

असन्तोष पनपता है जो पूंजीवाद द्वारा स्वयं ही अपने विनाश को बुलाना है। अर्थात् यह आर्थिक संकटों का जन्मदाता है।

5. **पूंजीवाद में व्यक्तिगत तत्त्व का अन्त –** मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद व्यवस्था में श्रमिक के वैयक्तिक चरित्र का लोप होकर उसका मशीनीकरण हो जाता है। पूंजीपति श्रमिकों के व्यक्तित्व विकास के लिए कोई योगदान नहीं देते। वे उनको मशीनों का दास बना देते हैं। उसकी सृजनात्मक शक्ति का लोप हो जाता है, उसका जीवन निरन्तर पतन की तरफ जा रहा होता है। इस पतनावस्था का अन्त करने के लिए आखिरकार श्रमिक वर्ग में चेतना का उदय होने लगता है और पूंजीवाद के विनाश के बीच दिखाई देने लग जाते है।

6. **पूंजीवाद श्रमिकों की एकता में सहायक है –** पूंजीवादी व्यवस्था के दोषपूर्ण होने से श्रमिकों में अंसतोष पैदा होता है। इससे वे छुटकारा पाने के लिए एकता का प्रयास करने लगते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था में जहां अनेक उद्योग एक ही स्थान पर एकत्र होते हैं, वही उनमें लाखों काम करने श्रमिक भी आपस में अपने कष्टों के बारे में बातचीत करने लगते है। इससे दुःखों केा दूर करने के लिए अर्थात् पूंजीपति वर्ग के शोषण से छुटकारा पाने के लिए संगठन बनाने की दिशा में प्रयास करने लग जाते हैं। इस तरह पूंजीवादी विकेन्द्रीकरण सुदृढ़ श्रमिक संगठनों को जन्म देता है और पूंजीवाद का प्रखर आवाज में विरोध शुरू हो जाता है।

7. **पूंजीवाद अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक आन्दोलन का जन्मदाता –** पूंजीवाद के दोष हर स्थान पर लगभग एक जैसे ही होते है। पूंजीवाद का तीव्र विकास विश्व के अनेक देशों को समीप लाता है। जब पूंजीवादी देश अपने उत्पादित माल को अपने देश में खपाने में असफल रहते हैं तो वे अन्य देशों में मंडियों की खोज करते है। इससे श्रमिकों से अन्य देशों के श्रमिकों से सम्पर्क करने का अवसर प्राप्त मिलता है। इस तरह श्रमिक राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर निकलकर अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर संगठित होने लग जाते है और श्रमिक आन्दोलन विश्वव्यापी रूप धारण कर लेता है। इस तरह मार्क्स का विश्वास है कि एक दिन विश्व में पूंजीवाद के खिलाफ एक अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर क्रान्ति होगी और

पूंजीवाद का विनाश होकर उसके स्थान पर साम्यवादी समाज की स्थापना होगी। यह मार्क्स का यथार्थ स्वप्न है।

इस तरह मार्क्स ने पूंजीवाद के आंतरिक दोषों के कारण उसके विनाश का स्वप्न देखा। उसका विश्वास था कि श्रमिक वर्ग के संगठित होने पर सर्वहारा क्रान्ति द्वारा पूंजीवाद की जड़े उखड़ जाएंगी और उसके स्थान पर श्रमिक वर्ग की तानाशाही स्थापित हो जाएगी। धीरे – धीरे पूंजीवाद के अन्तिम अवशेष भी समाप्त हो जाएंगे और एक वर्ग – विहीन समाज की स्थापना होगी। इस समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार काम करेगा और समाज उसे योग्यतानुसार काम देगा, इसमें वर्ग – संघर्ष का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। क्योंकि वर्ग विहिन या साम्यवादी समाज की स्थापना के उपरान्त समाज में केवल श्रमिक वर्ग ही शेष बचेगा। पूंजीपति वर्ग का पूरी तरह सफाया हो जाएगा। मार्क्स ने कहा है – "साम्यवादी समाज की उच्चतर स्थिति में जबकि व्यक्ति श्रम – विभाजन की पतनकारी अधीनता से मुक्त हो जाएगा और जब उसके साथ ही बौद्धिक तथा शारीरिक श्रम का विरोध भी समाप्त हो जाएगा, जब श्रम जीवन का साधन ही नहीं बल्कि स्वयं जीव की सबसे बड़ी आवश्यकता बन जाएगा, जब व्यक्ति की समस्त शक्तियों के विकास से उत्पादन की शक्ति भी उतनी ही बढ़ सकेगी और सामाजिक सम्पत्ति के समस्त स्त्रोत प्रचुरता से प्रवाहित होने लगेंगे तभी पूंजीवादी औचित्य का सीमित क्षितिज पार किया जा सकेगा और समाज अपनी पताका पर यह अंकित कर सकेगा कि प्रत्येक अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करें और प्रत्येक अपनी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त करे।" यही साम्यवादी समाज की स्थापना की स्थिति होगी।

वर्ग – संघर्ष की आलोचनाएं (Criticisms of the Theory of Class – Struggle)

मार्क्स के वर्ग – संघर्ष के सिद्धान्त की आलोचनाओं के निम्नलिखित आधार हैं –

1. **वर्ग की अस्पष्ट एवं दोषपूर्ण परिभाषा (Vague and defective definition of class)** – मार्क्स द्वारा दी गई वर्ग की परिभाषा के अनुसार आधुनिक समाज में मजदूरों और पूंजीपतियों के दो स्पष्ट वर्ग निश्चित नहीं किए जा सकते। आजकल उद्योगों में काम करने वाले अनेक मजदूर कम्पनियों के शेयर

खरीदकर उद्योगों में हिस्सेदार बन जाते हैं और अतिरिक्त मूल्य के रूप में लाभ ग्रहण करने वाले पूंजीपति बन जाते हैं। इसी तरह उद्योगों के प्रबन्धकों को किस श्रेणी में रखा जाए ? उन्हें न तो पूंजीपति वर्ग कहा जा सकता है और न ही मजदूर। सेबाइन ने कहा है कि – "मार्क्स के सामाजिक वर्ग की धारणा की अस्पष्टता उसकी भविष्यवाणी की कुछ गम्भीर गलतियों के लिए उत्तरदायी है।" अतः कहा जा सकता है कि मार्क्स के 'वर्ग' की परिभाषा अस्पष्ट व दोषपूर्ण है।

2. **मानव इतिहास केवल वर्ग–संघर्ष का इतिहास नहीं है (Human History is not only the history of struggle)** – मार्क्स का यह कथन कि आजतक का मानव इतिहास वर्ग – संघर्ष का इतिहास है, यथार्थ स्थिति को स्पष्ट नहीं करता। इसमें सन्देह नहीं है कि इतिहास युद्धों से भरा पड़ा है। लेकिन ये सभी युद्ध वर्ग –संघर्ष की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते। इनमें से अधिकतर युद्धों का उद्देश्य आर्थिकन होकर समान स्थिति वाले शासकों के बीच हुए हैं। प्राचीन व मध्ययुगीन के अनेक संघर्ष राजाओं के मध्य हुए है। डॉ० राधाकृष्ण ने वर्ग – संघर्ष की अवधारणा की समक्षा करते हुए कहा है – "इतिहास केवल वर्ग–संघर्ष का ही लेखामात्र नहीं है। शब्दों के युद्ध, वर्गों के युद्ध की अपेक्षा अधिक हिंसक और अधिक सामान्य रहे हैं। गत महायुद्धों में राष्ट्रीयता की भावना वर्गीयता की भावना की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली थी। इतिहास में शासक और शासित, अमीर और गरीब, सदैव ही अपने देश के शत्रुओं से एकमत होकर लड़े है। हम अपने देश की पूंजीवादी मालिकों की अपेक्षा विदेश के श्रमिकों से अधिक घृणा करते हैं। इतिहास में धर्म के नाम पर लडाईयां हुई हैं – पिछले युद्ध में मार्क्सवादी दो –चार अपवादों को छोड़कर अपने – अपने पूंजीवादी राज्यों की ओर से लड़े थे। भारत में हिन्दू – मुसलमानों की समस्या अथवा आयरलैण्ड में कैथोलिक और प्रोटेस्टेंटों की समस्या, वर्ग – संघर्ष की समस्या नहीं है। अतः वर्ग –संघर्ष की अपेक्षा अन्य तत्वों राष्ट्रीयता, धर्म व संस्कृति ने भी इतिहास का निर्माण किया है।

3. **समाज में दो वर्ग मानना भूल है (To recognise only two classes in society is an error)** – आलोचकों का कहना है कि समाज में केवल दो ही वर्ग नहीं होते। पूंजीपति व श्रमिक वर्ग की अतिरिक्त एक मध्यम वर्ग (बुद्धिजीवी) भी होता है। यह वर्ग समाज के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। समाज की प्रगति बुद्धिजीवी वर्ग पर ही निर्भर करती है। असके अन्तर्गत इंजीनियर, वकील, डॉक्टर, अध्यापक व तकनीशियन आदि आते है। इस वर्ग की संख्या लगातार बढ़ रही है। इस वर्ग का होना मार्क्स के वर्ग – संघर्ष के सिद्धान्त की खण्डन करता है। अतः मार्क्स द्वारा समाज का दो वर्गों में किया गया विभाजन गलत है। समाज में दो के स्थान पर कई वर्ग हैं।

4. **संघर्ष जीवन का मूल आधार नहीं है (Struggle is not the basis of life) –** मार्क्स का कहना है कि संघर्ष जीवन का आधार है। इसी पर जीवन का अस्तित्व निर्भर करता है। किन्तु सत्य तो यह है कि संघर्ष की बजाय , प्रेम, त्याग, सहयोग, सहानुभूति, अहिंसा आदि के ऊपर सम्पूर्ण मानव समाज का अस्तित्व निर्भर करता है। आर्थिक क्षेत्र में भी संघर्ष की बजाय आपसी सहयोग व शांतिपूर्ण वातावरण में ही उत्पादन सम्भव है।

5. **क्रान्ति का नेतृत्व मध्यम वर्ग करता है (It is the middle class not the labour class that leads the Revolution)** – मार्क्स का कहना गलत है कि श्रमिक वर्ग ही क्रान्ति का आधार होता है और भविष्य में भी सर्वहारा वर्ग ही क्रान्ति का बिगुल बजाएगा। सत्य तो यह है कि आज तक जितनी भी क्रान्तियां हुई हैं, उन सबका नेतृत्व बुद्धिजीवियों ने किया था, न कि श्रमिकों ने। लेनिन ने स्वयं इस बात को स्वीकार करते हुए कहा है –"हमने कहा था कि मजदूर लोग अब तक इस योग्य नहीं है कि उनमें समाजवादी चेतना उत्पन्न हो सके। उनके अन्दर यह चेतना केवल बाहर से ही लाई जा सकती है। सभी देशों के इतिहासों से प्रमाणित होता है कि अपने अनन्य प्रयत्नों से मजदूर वर्ग केवल मजदूर सभा की चेतना विकसित कर सकता है। जिसे समाजवादी मोड़ देने ने के लिए संगठित 'बौद्धिक दल' का अस्तित्व आवश्यक है।" रूस और चीन की

क्रान्तियों को सफल बनान में लेनिन तथा माओ जैसे बुद्धिजीवियों की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण रही है।

6. **राष्ट्रीयता की भावना को कम महत्त्व देना (Less Importance to National Feelings)–** मार्क्स ने कहा है कि समाज के सभी वर्गों से वर्गीयता की भावना ही सर्वाधिक प्रबल होती है। सत्य तो यह है कि राष्ट्रीयता की भावना वर्गीयता की भावना से ऊपर होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध में धुरी राष्ट्रों (जापान, इटली व जर्मनी) की महत्त्वपूर्ण भूमिका वर्गीयता की अपेक्षा उग्र – राष्ट्रीयता की भावना पर आधारित थी। जर्मनी में यहुदियों पर हिटलर द्वारा किए गए अत्याचार वर्ग – संघर्ष का परिणाम न होकर हिटलर की जातीय – श्रेष्ठता की भावना का परिणाम था। युद्ध के समय एक देश के अन्दर ही पूंजीपति व मजदूर दोनों वर्ग एक जगह संगठित होकर दूसरे देश के पूंजीपतियों व मजदूरों का विरोध करने लगते हैं। इसके पीछे मुख्य कारण राष्ट्रवाद की भावना ही कार्य करती है।

7. **आर्थिक व सामाजिक वर्ग का अलग होना (Economic and Social Classes are Separate) –** आलोचकों का कहना है कि सामाजिक और आर्थिक वर्ग एक न होकर अलग – अलग होते हैं। यद्यपि यह भी सम्भव है कि मार्क्स ने दोनों को एक मानकर उनका राजनीतिक दृष्टि से सही प्रयोग करने का प्रयास किया होगा। किन्तु उसका यह प्रयास अनेक त्रुटियों का जन्मदाता बन गया है।

8. **मार्क्स की भविष्यवाणी गलत साबित हुई (Predictions of Marx were not correct) –** मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि एक दिन पूंजीवाद का अन्त होगा और उसके स्थान पर सर्वहारा वर्ग का अधिनायत्व स्थापित होगा। उसकी यह भविष्यवाणी गलत साबित हुई। आज अनेक पूंजीवादी देश तेजी से अपना विकास कर रहें हैं। वहां पर उनके श्रमिक वर्ग के साथ सम्बन्ध अच्छे हैं। आज अनेक पूंजीवादी देशों में मजदूरों की दशा तेजी से सुधर रही हैं वे मजदूरों को उचित वेतन देकर श्रमिक – अंसतोष को कम कर रहे हैं। वहां पर निकट भविष्य में किसी संगठित श्रमिक आन्दोलन की संभावना नजर नहीं

आ रही है। रूस जहां पर श्रमिक तानाशाही द्वारा साम्यवाद की स्थापना हुई थी, वह भी टूटकर अधिक उदारवादी व्यवस्था की तरफ अग्रसर हो रहा है। आज उत्पादन प्रणाली में पूंजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग के अलावा तीसरा वर्ग (बुद्धिजीवी) भी तेजी से उभर चुका है। जर्मनी और इटली में पूंजीवाद का अन्त होने पर साम्यवाद के स्थान पर नाजीवाद व फासीवाद का विकास हुआ। ये दोनों विचारधाराएं साम्यवाद विरोधी थी। इस प्रकार मार्क्स का कथन असत्य सिद्ध हुआ कि वर्ग – संघर्ष के परिणामस्वरूप साम्यवाद की स्थापना होगी।

9. **यह सिद्धान्त हानिकारक है (It is a very dangerous theory) –** कैटलिन ने मार्क्स के वर्ग – संघर्ष के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि यह सिद्धान्त आधुनिक कष्टों, दुःखों, रोगों और फासीवाद का जनक है। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि – "मैं मार्क्स पर यह आरोप लगाता हूं कि उसने द्वन्द्वात्मक प्रतिक्रिया के द्वारा फासीवाद और संघर्ष को जन्म दिया है, जो बीसवीं शताब्दी के कई कष्टों का कारण है।" लास्की ने भी कहा है – पूंजीवाद की समाप्ति से साम्यवाद की अपेक्षा अराजकता फैल सकती है जिससे साम्यवादी आदर्शों से बिल्कुल असम्बन्धित कोई तानाशाही जन्म ले सकती है।" इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मार्क्स का वर्ग – संघर्ष का सिद्धान्त अनेक कष्टों को जन्म दे सकता है। इसलिए यह हानिकारक सिद्धान्त है।

उपरोक्त आलोचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि मार्क्स का वर्ग–संघर्ष का सिद्धान्त सही नहीं है। प्रो० हंट ने इसे एक कल्पना कहा है। प्लैमनस्ज इसे विरोधाभासी सिद्धान्त का नाम देता है। यदि हम मार्क्स के इस सिद्धान्त को स्वीकार कर ले तो समाज में अराजकता फैल जाएगी और मानव – समाज संघर्षों का अखाड़ा बन जाएगा। दूसरी तरफ एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि मार्क्स की भविष्यवाणी गलत साबित हुई कि पूंजीपति वर्ग का लोप हो जाएगा। यह भी आवश्यक नहीं है कि पूंजीवाद का अन्त होने पर साम्यवादी व्यवस्था ही स्थापित

हो। केरेयु हण्ट इसे वैज्ञानिक आधार पर मिथ्या मानते हैं। इस सिद्धान्त के आधार पर वर्ग – व्यवस्था का उचित विश्लेषण करना असम्भव है।

परन्तु अनेक कमियों के बावजूद यह सिद्धान्त इस व्यावहारिक राजनीतिक सत्य को प्रकट करता है कि यदि पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत श्रमिकों का लगातार अमानवीय शोषण एवं क्रुर दमन होता रहेगा तो इस अन्यायपूर्ण स्थिति के अन्त के लिए श्रमिक वर्ग द्वारा उग्र वर्ग – संघर्ष के रूप में खूनी – संघर्ष या क्रान्ति का होना अनिवार्य है। वस्तुतः 19 वीं सदी की उग्र एवं क्रुर पूंजीवादी व्यवस्था के प्रसंग में मार्क्स के वर्ग – संघर्ष का विशिष्ट महत्त्व था और उसके इन विचारों ने पूंजीवाद पर निरन्तर दबाव बनाए रखने का कार्य भी किया, जिसके परिणामस्वरूप पूंजीवादियों ने श्रमिक वर्ग के कष्टों की ओर ध्यान दिया और कल्याण की योजनाएं क्रियान्वित की। रूस में 1917 की सर्वहारा क्रान्ति की सफलता के बाद विश्व में मजदूरों और किसानों के सम्मान में वृद्धि हुई। इस प्रकार अनेक दोषों के बावजूद यह कहा जा सकता है कि मार्क्स के वर्ग – संघर्ष सिद्धान्त का अपना विशेष महत्त्व है।

7.9 मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Marx's Theory of Surplus - Value)

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त कार्ल मार्क्स की राजनीतिक सिद्धान्त को एक महत्त्वपूर्ण देन है। मार्क्स ने इस सिद्धान्त का विवेचन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Das Capital' में किया है। मार्क्स ने पूंजीपति वर्ग द्वारा श्रमिक वर्ग का शोषण करने की प्रक्रिया पर इस सिद्धान्त में व्यापक प्रकाश डाला है। मार्क्स का यह सिद्धान्त 'मूल्य के श्रम सिद्धान्त' (Labour Theory of Value) पर आधारित है। सेबाइन ने लिखा है – "अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त प्रकट रूप में मूल्य के श्रमिक सिद्धान्त का ही प्रसार था जिसे रिकार्डो तथा संस्थापित अर्थशास्त्रियों ने बनाया था। अगर मूल्य का श्रमिक सिद्धान्त नहीं होगा तो अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त भी नहीं होगा। अतः अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त श्रम सिद्धान्त का ही वंशज है।" यह सिद्धान्त सबसे पहले पैन्टी ने इंग्लैण्ड में प्रस्तुत किया था। इसे बाद में एडमस्थिम तथा रिकार्डो ने विकसित किया। इन दोनों अर्थशास्त्रियों ने निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि श्रम ही मूल्य

का स्त्रोत है श्रम के बिना मूल्य का कोई महत्त्व नहीं हो सकता। प्रो० वेपर ने भी मार्क्स के मूल्य सिद्धान्त पर रिकार्डों का प्रभाव स्वीकार करते हुए लिखा है – "मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त रिकार्डों का ही व्यापक रूप है जिसके अनुसार किसी भी वस्तु का मूल्य उसमें निहित श्रम की मात्रा के अनुपात में होता है, बशर्ते कि यह श्रम – उत्पादन की क्षमता के वर्तमान स्तर के समान हो।"

अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की व्याख्या –

मार्क्स का कहना है कि पूंजीपतियों का धन असंख्य वस्तुओं का जमा भंडार है। इन सभी वस्तुओं की अपनी कीमत होती है। श्रम भी एक ऐसी ही वस्तु है। श्रम अन्य सभी वस्तुओं के मूल्य निर्धारित करता है। किसी वस्त का मूल्य उसकी उपयोगिता की मात्रा का अनुमान लगाने के बाद ही निर्धारित हो जाता है। उपयोगिता की मात्रा का अनुमान किसी अन्य वस्तु से उसके विनिमय मूल्य पर ही आधारित होता है। इस तरह मूल्य सिद्धान्त के बारें में जानने के लिए किसी वस्तु के उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य की अवधारणा के बारे में जानना आवश्यक हो जाता है। मार्क्स ने 'अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त' का प्रतिपादन करने के लिए इन दोनों मूल्यों की विस्तृत विवेचना की है।

1. उपयोग – मूल्य (Use - Value)
2. विनिमय – मूल्य (Exchange - Value)

मार्क्स ने उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य में व्यापक आधार पर अन्तर किया है। उसका कहना है कि उपयोग मूल्य किसी वस्तु की मानव आवश्कताओं को सन्तुष्ट करने में ही निहित है। उपयोगिता का अर्थ है मनुष्य की इच्छा पूरी करना, जो वस्तुएं मनुष्य की इच्छा पूरी करती है, वे उसके लिए उपयोगी व मूल्यवान है। उदाहरणार्थ – रेगिस्तान में पानीकम और रेत अधिक होता है। वहां रेत की बजाय पानी की उपयोगिता अधिक हैं, क्योंकि पानी मनुष्य की प्यास बुझाता है। अपनी उपयोगिता के कारण वहां पानी रेत से अधिक मूल्यवान होता है।

"विनिमय मूल्य" यह अनुपात है जिसके आधार पर एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु को प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति के पास घी है और किसी दूसरे के पास तेल है। यदि एक को घी की अपेक्षा तेल की आवश्यकता है और दूसरे को तेल की बजाय घी आवश्यकता है तो दोनों आपस में वस्तु विनिमय कर सकते हैं। एक व्यक्ति एक किलो घी देकर 4 किलो तेल प्राप्त करता है तो एक किलो घी का विनिमय मूल्य 4 किलो तेल होगा।

मार्क्स ने किसी वस्तु के उपयोग मूल्य की तुलना में विनिमय मूल्य को अधिक महत्त्व दिया है। यही मूल्य का मापदण्ड है। मार्क्स ने इन दोनों मूल्यों से श्रम को अधिक महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है कि श्रम ही वस्तुओं का विनिमय मूल्य निश्चित करता है। अर्थात् किसी वस्तु का विनिमय मूल्य उस वस्तु के ऊपर लगाए गए श्रम की मात्रा के ऊपर निर्भर करता है। इसे श्रम सिद्धान्त कहा जाता है। मार्क्स ने उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि जमीन में दबा हुआ कोयला उपयोगी होने के कारण उपयोग मूल्य तो रखता है लेकिन जब तक उसे जमीन से खोदकर बाहर नहीं निकाला जाता है, जब तक उससे मशीन नहीं चलाई जा सकती है। अतः इस उद्देश्य से कोयले को जमीन से बाहर निकालने के लिए जो श्रम किया जाता है, वही उसका 'विनिमय मूल्य' (Exchange Value) निर्धारित करता है। इससे स्पष्ट है कि जब तक किसी प्राकृतिक पदार्थ पर मानव श्रम व्यय न हो तो वह पदार्थ विनिमय मूल्य से रहित होता है। मानव श्रम लगाने पर ही उसका विनिमय मूल्य पैदा होता है। इस आधार पर मार्क्स कहता है कि प्रत्येक वस्तु का वास्तविक मूल्य वह श्रम है जो उसे मानव उपयोगी बनाने के लिए उस पर व्यय किया जाता है, क्योंकि वही 'विनिमय मूल्य' पैदा करता है।

अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) – इस तरह मार्क्स श्रम को मूल्य का निर्धारक तत्व मानता है और उसके आधार पर ही अपने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की व्याख्या करता है। मार्क्स कहता है कि पूंजीवादी व्यवस्था में श्रमिक को विनियम मूल्य के बराबर वेतन नहीं मिलता है, अपितु उसकी तुलना में काफी कम वेतन मिलता है। इस तरह सम्पूर्ण विनिमय के अधिकतर भाग को पूंजीपति हड़प जाता है। यह

पूंजीपति द्वारा हड़पा जाने वाला मूल्य या लाभ ही अतिरिक्त मूल्य कहलाता है। मार्क्स के अनुसार – "अतिरिक्त मूल्य उन दो मूल्यों में से यदि हम विनिमय मूल्य में से श्रमिक के वेतन को घटा दें, तो जो राशि (मूल्य) बचती है, उसे ही अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) कहा जाता है।" उसने आगे कहा है कि, "यह धन दो मूल्यों का अन्तर है, जिसे मजदूर पैदा करता है और जिसे वह वास्तव में पाता है।" अर्थात् यह वह मूल्य है, जिसे प्राप्त कर पूंजीपति मजदूर को कोई मूल्य नहीं चुकाता। मैकसी ने भी कहा है कि – "यह वह मूल्य है, जिसे पूंजीपति श्रमिकों के खून – पसीने की कमाई पर 'पथ पर' (Toll Tax) के रूप में वसूलता है।" मार्क्स के 'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त' को इस उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। मान लीजिए एक श्रमिक 8 घण्टे काम करके एक दरी बनता है जिसका विनिमय मूल्य 400 रू० है। इसमें से श्रमिको को मात्र 100 रू० ही मजदूरी के तौर पर मिलते हैं। इसका अर्थ यह है कि श्रमिक को केवल 2 घण्टे के श्रम के बराबर मजदूरी मिली। शेष 6 घण्टे का श्रम (300 रूपए) पूंजीपति ने स्वयं हड़प लिया। मार्क्स के इस सिद्धान्त के अनुसार यह 300 रूपए अतिरिक्त मूल्य है, जिस पर श्रमिक का ही अधिकार होना चाहिए। किन्तु व्यवहार में पूंजीपति इस मूल्य को अपनी जेब में रख लेता है। उसे केवल पेटभर मजदूरी ही देकर उसका भरपूर शोषण करता है ताकि वह काम करने योग्य शरीर का स्वामी बन कर रह सके।

इसे 'मजदूरी का लौह नियम' कहा जाता है। इसी के आधार पर पूंजीपति श्रमिक का वेतन निश्चित करके अतिरिक्त मूल्य पर अपना अधिकार बनाए रखता है। पूंजीपति ही हार्दिक इच्छा यही होती है कि अतिरिक्त मूल्य में वृद्धि हो जाए। इस इच्छा का परिणाम, श्रमिकों के शोषण के रूप में निकलता है। मार्क्स का कहना हे कि श्रमिकों के शोषण को रोकने का एकमात्र उपाय 'अतिरिक्त मूल्य' श्रमिकों की जेब में जाना है। क्योंकि किसी वस्तु के उत्पादन में श्रम ही सब कुछ होता है।

अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त के निहितार्थ

(Implications of the theory of Surplus - Value)

1. श्रम ही किसी वस्तु का मूल्य निर्धारक है। विनिमय मूल्य श्रम पर ही आधारित होता है।
2. समस्त विनिमय मूल्य पर केवल श्रमिका का अधिकार होता है, किन्तु व्यवहार में उसे वेतन के रूप में थोड़ा सा ही भाग मिलता है।
3. व्यवहार में विनिमय मूल्य पर पूंजीपति का ही अधिकार होता है।
4. अतिरिक्त मूल्य विनिमय मूल्य का वह भाग है जो श्रमिक को नहीं दिया जाता है तथा जिसे स्वयं पूंजीपति अपने पास रख लेता है। यह पूंजीपति द्वारा श्रमिक के धन की चोरी है और इस चोरी के कारण ही पूंजीपति को बड़ा फायदा होता है और उसके पास पूंजी का संचय बढ़ता है।
5. पूंजीवाद श्रमिकों के घोर शोषण पर खड़ा है, जो एक अन्यायपूर्ण अवस्था है इसलिए इसके विरूद्ध क्रान्ति की जानी चाहिए।

'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त' की आलोचनाएं **(Criticisms of the theory of surplus - value)**

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त बाहर से तो अति आकर्षक व सुन्दर दिखाई देता है। लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से इसका विश्लेषण करने पर इसमें अनेक कमियां पाई जाती हैं, इसलिए यह सिद्धान्त आलोचना का शिकार बन गया है। बीयर ने इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि मार्क्स का यह सिद्धान्त अर्थ – शास्त्रीय सच्चाई की अपेक्षा सामाजिक या राजनीतिक नारे से अधिक महत्त्व नहीं रखता है। मार्क्स के इस सिद्धान्त की आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं –

1. **पक्षपात पूर्ण दृष्टिकोण (Biased view) –** मार्क्स के अनुसार श्रम ही किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित करता है। अर्थात् श्रम ही एकमात्र मूल्य – निर्धारक तत्व है। इसलिए मार्क्स ने उत्पादन के अन्य साधनों, भूमि, पूंजी, मशीनों आदि की घोर उपेक्षा की है। उत्पादन में इन साधनों की भूमिका बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। इनके अभाव में उत्पादन की कल्पना करना असम्भव है। मार्क्स ने

श्रम को अधिक महत्त्व देकर अन्य साधनों के साथ भेदभाव करता है। इसलिए मार्क्स का अन्य साधनों के प्रति भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण साफ झलकता है।

2. **मानसिक श्रम की उपेक्षा (Disregard of Mental Labour) –** मार्क्स ने अपने इस सिद्धान्त में शारीरिक श्रम को अधिक महत्त्व दिया है। आलोचकों का कहना है कि उत्पादन की वृद्धि में तकनीकी ज्ञान, प्रबन्ध कुशलता तथा व्यावसायिक कुशलता आदि का भी बहुत बड़ा योगदान होता है। मानसिक श्रम ही किसी वस्तु के निर्माण व उसके तैयार होने पर बेचने के लिए उपयुक्त बाजार की तलाश करता है। मानसिक शक्ति ही किसी उद्योग के फायदे व धनी के बारे में विचार कर सकती है। लेकिन मार्क्स ने मानसिक श्रम को महत्त्व देकर बड़ी भूल की है।

3. **उत्पादन पर व्यय का वर्णन नहीं (No Description of Expenditure made on production) –** मार्क्स ने वस्तुओं के उत्पादन में पूंजीपति द्वारा किए गए व्यय का कोई ब्यौरा इस सिद्धान्त में नहीं दिया है। पूंजीपति को अतिरिक्त मूल्य की राशि श्रमिकों के उत्तम जीवन, बेकारी व बोनस, मशीनों की घिसावट आदि के सुधार पर व्यय करना पड़ता है। अतः मार्क्स का यह कहना गलत है कि पूंजीपति अतिरिक्त मूल्य के अधिकतर हिस्से को हड़प जाता है।

4. **प्रचारात्मक अधिक, आर्थिक कम (More stress on Publicity than on Economics) –** प्रो० केरयु हण्ट का विचार है कि – "मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त किसी भी रूप में 'मूल्य का सिद्धान्त नहीं है।' यह वास्तव में 'शोषण का सिद्धान्त' है, जिसके द्वारा यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि साधन सम्पन्न वर्ग सदैव ही साधनहीन वर्ग के श्रम पर जीवित रहता है।" मैकस बियर ने भी कहा है – "इस विचार को अस्वीकार करना असम्भव है कि मार्क्स का सिद्धानत आर्थिक सत्य के स्थान पर राजनीतिक और सामाजिक नारेबाजी है।"

5. **अस्पष्ट सिद्धान्त (Theory not clear) –** अलेकजैण्डर ग्रे (Alexander Grey) ने कहा है कि क्या कोई भी हमें यह बता सकता है कि मूल्य से मार्क्स का वास्तव में क्या अभिप्राय था ? इसके अलावा मार्क्स ने जिन पूंजीपतियों वे

मजदूरों का उल्लेख किया है, वे न जाने किस लोक से सम्बन्ध रखते हैं। मार्क्स ने मूल्य, दाम आदि शब्दों का प्रयोग बड़े मनमाने व अनिश्चित ढंग से किया है। मार्क्स के विचारों की अस्पष्टता इस बात से सिद्ध हो जाती है – "मजदूरी दुगने या तिगुने कर दीजिए मुनाफा स्वयंमेव ही दुगुना हो जाएगा।" बिना कुशलता व तकनीकी ज्ञान के मुनाफे में वृद्धि होना असम्भव है। लेकिन मार्क्स इतनी बड़ी अस्पष्ट व असंगत बात सरलता से कह दी। इस तरह मार्क्स ने आर्थिक शब्दों व आर्थिक्क प्रक्रिया की मनमानी व्याख्या करके इस सिद्धान्त को भ्रांतिपूर्ण बना दिया है।

6. **सामाजिक हित न कि आर्थिक हित का सिद्धान्त (Theory of Social not of the Economic Interest) –** सेबाइन ने कहा है कि – "मार्क्स के मूल्य – सिद्धान्त का प्रयोजन विशुद्ध रूप से आर्थिक न होकर नैतिक था, क्योंकि मार्क्स के मूल्य का सिद्धान्त कीमतों का सिद्धान्त नहीं, बल्कि सामाजिक हित एवं 'मानव मूल्य' का सिद्धान्त था।" बीयर ने भी इसकी पुष्टि करते हुए कहा है कि यह सिद्धन्त सामाजिक या राजनीतिक नारे से अधिक महत्त्व नहीं रखता है। यह सिद्धान्त मजदूरों के शोषण का इतना अधिक वर्णन करता है कि यह आर्थिक हित की बजाय सामाजिक हित की बात करता प्रतीत होता है।

7. **गलत धारणाओं पर आधारित (Based on mis-conceptions) –** मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त कई गलत धारणाओं पर आधारित है। उदाहरण के रूप में – "मार्क्स ने कहा है कि 'अतिरिक्त मूल्य' पर श्रमिक का अधिकार होना चाहिए। यदि मार्क्स की इस बात को मान लिया जाए तो पूंजीपति उत्पादन क्यों करेंगे ? कोई भी व्यक्ति लाभ कमाने के उद्देश्य से ही उत्पादन करता है। यदि सारा लाभ उसकी जेब में जाने की बजाय किसी वर्ग विशेष के पास जाएगा तो उसके दिमाग में कमी नहीं है कि वह उत्पादन जारी रखेगा। इस तरह गलत धारणाओं पर आधारित होने के कारण भी यह सिद्धान्त आलोचना का शिकार हुआ है।

8. **मौलिकता का अभाव (Lack of Originality) –** मार्क्स ने यह सिद्धान्त अन्य अर्थशास्त्रियों रिकार्डो तथा एडम स्मिथ के श्रम सिद्धान्त पर आधारित किया है। इसलिए यह सिद्धान्त मार्क्स का मौलिक सिद्धान्त न होने के कारण अनेक भ्रांतियों का जनक बन गया और आलोचना का शिकार हुआ।

इस तरह मार्क्स की अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त उत्पादन के विभिन्न पहलुओं की उपेक्षा करने के कारण अनेक आलोचनाओं का शिकार हुआ है। अनेक आलोचकों ने तो इसके नामकरण पर ही आपत्ति जतायी है। उन्होंने कहा है कि इस सिद्धान्त का उद्देश्य शोषण दिखाना है, पूंजीपति का चरित्र दिखाना है तथा समाजवाद द्वारा कारीगर का शोषण रोकना है, इसलिए इसका नाम शोषण का सिद्धान्त होना चाहिए न कि अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त। लेकिन अनेक दोषों के बावजूद भी यह कहना पड़ेगा कि शोषण के एक सिद्धान्त के रूप में यह सिद्धान्त आज भी उतना ही सही है जितना कि मार्क्स के समय में था क्योंकि मार्क्सवाद के सभी आलोचकों के द्वारा इस बात को स्वीकार किया गया है कि पूंजीवादी व्यवस्था में श्रमिक को अपना उचित अंश प्राप्त नहीं होता। पोपर का कहना है कि – "यदि मार्क्स का यह विश्लेषण दोषपूर्ण है लेकिन शोषण का वर्णन करने के लिए यह आज भी काफी सम्मानीय है।" मार्क्स की भविष्यवाणियां गलत हो सकती हैं लेकिन उसके द्वारा पूंजीवाद का तर्कपूर्ण विरोध सही है। सेबाइन ने मार्क्स के इस सिद्धान्त का महत्त्व स्वीकार करते हुए कहा है – "अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त एक ऐसा मूल तत्त्व है जो पूंजीवाद की ह्रदय हिला देनी वाली विभीषिकाओं को उद्घाटित करता है। यह सिद्धान्त इतना तर्कपूर्ण तथा ठोस है कि इसे चुनौती नहीं दी जा सकती और इसे स्वीकार कर लेने पर हम कह सकते हैं कि मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त पूंजीवाद के विरूद्ध श्रमिकों के हितों की रक्षा का अचूक शस्त्र है। यदि इस सिद्धान्त को आधा भी स्वीकार कर लिया जाए तो श्रमिक वर्ग के लिए प्रगति के नए द्वार खुल जाएंगे और उन पर मार्क्स का ऋण युगों – युगों के लिए अमिट रूप में चढ़ जाएगा तथा सामाजिक विषमता का लगभग अन्त हो जाएगा।

7.10 समाजवादी समाज की अवधारणा (Conception of Socialist Society)

मार्क्स का कहना है कि श्रमिक और पूंजीपति के बीच विरोध एक ऐतिहासिक सत्य है। आदिम साम्यवाद के बाद पूंजीवादी व्यवस्था के विकास तक किसी ने किसी रूप में वर्ग – संघर्ष की धारणा का अस्तित्व रहा है। पूंजीवादी व्यवस्था में वर्ग – संघर्ष की समापत्ति होना अवश्यम्भावी है, क्योंकि पूंजीवाद में ही उसके विनाश के बीज निहित है। मार्क्स पूंजीवादी के दोषों को ही समाजवाद की स्थापना के लिए उत्तरदायी मानते हुए कहता है कि पूंजीवादी व्यवस्था में बड़े पैमाने पर उत्पादन व धन संग्रह की प्रवृति पाई जाती है। इससे पूंजीपति वर्ग की संख्या कम होती जाएगी और दूसरी तरफ भंयकर प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप पूंजीपति वर्ग की संख्या कम होकर कारीगरों (श्रमिकों) की संख्या में अवश्य वृद्धि होगी। बड़े पैमाने पर उत्पादन की प्रवृति के कारण मजदूरों में वर्ग – चेतना का जन्म अवश्य होग क्योंकि वे सामूहक रूप से पूंजीवादी व्यवस्था के शोषण के शिकार होंगे। जब पूंजीपति अपने उत्पादित माल को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बेचेंगे तो श्रमिकों में भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की वर्ग चेतना आएगी। बार – बार आने वाले आर्थिक संकटों के कारण श्रमिकों की क्रय शक्ति कम होगी। इससे श्रमिकों के दुःख बढ़ेंगे और अन्त में श्रमिक वर्ग इस सीमा तक शोषित होगा कि पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष के अलावा उसके पास कोई विकल्प शेष नहीं बचेगा। श्रमिक वर्ग संगठित क्रान्ति करके पूंजीवाद को उखाड़ फैकेगा और उसके स्थान पर सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की स्थापना होगी। इसकी सम्पत्ति के बाद ही समाजवादी समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होगा।

7.11 सर्वहारा वर्ग की तानाशाही (Dictatorship of Prolectariat)

मार्क्स का कहना है कि सर्वहारा वर्ग की तानाशाही एक अस्थायी व्यवस्था होगी। यह पूंजीवाद से वर्ग – विहीन राज्य या समाजवादी समाज की स्थापना के मार्ग मं एक संक्रमण काल के रूप में जानी जाएगी। इसका अन्त होते ही समाज में वर्ग – संघर्ष की समाप्ति हो जाएगी और एक राज्य – विहिन समाज की स्थापना होगी। राज्य – विहिन या समाजवादी समाज की स्थापना में कुछ समय अवश्य लगेगा।

इसलिए कुछ समय तक पूंजीवादी व्यवस्था के अन्त के बाद श्रमिकों की तानाशाही स्थापित रहेगी, जिसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

1. **राज्य पर सर्वहारा वर्ग का नियन्त्रण (Control of State by the Proletariat)** – मार्क्स का कहना है समाजवादी समाज की स्थापना से पहले सर्वहारा वर्ग की सफल क्रान्ति के द्वारा पूंजीवादियों का राज्य पर से नियन्त्रण समाप्त कर दिया जाएगा और सर्वहारा वर्ग शासन की बागड़ोर स्वयं अपने हाथ मे लेगा। इसके बाद सर्वहारा वर्ग अपने हितों व वृद्धि के लिए समाज में किये पूंजीवादी तत्त्वों के सफाए के लिए सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की स्थापना करेगा अर्थात् राज्य के ऊपर पूरी तरह से सर्वहारा वर्ग का नियन्त्रण स्थापित हो जाएगा।
2. **सम्पत्ति का समाजीकरण (Socialisation of the Property)** – मार्क्स के अनुसार सर्वहारा वर्ग का अधिनायक तन्त्र निजी सम्पत्ति के अधिकार का अन्त करके उसके स्थान पर सार्वजनिक सम्पत्ति के अधिकार को जन्म देगा। सम्पत्ति के उत्पादन व वितरण के साधनों पर सारे समाज का स्वामित्व स्थापित किया जाएगा अर्थात् खानों, कारखानों, मशीनों, रेलों, जहाजों आदि को सारे समाज की अथवा सार्वजनिक सम्पत्ति समझा जाएगा।
3. **समाज हित में योजनाबद्ध तरीके से उत्पादन (Production in Social interest in a Planned Manner)** – मार्क्स का कहना है कि पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन का प्रमुख लक्ष्य निजी लाभ में वृद्धि करना होता है। इसमें अतिरिक्त मूल्य पर पूंजीपति का अधिकार होता है। परन्तु समाजवादी समाज में उत्पादन का मूल उद्देश्य समाज के आर्थिक हितों की रक्षा एवं वृद्धि होगा। सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आर्थिक योजनाएं बनाकर ही उत्पादन किया जाएगा। इससे आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होगा।
4. **योग्यतानुसार कार्य व कार्यानुसार वेतन का सिद्धान्त (Principle wages according to ability and nature of work)** – मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी समाज के अनेक श्रमिक बेरोजगार होते हैं अथवा उन्हें योग्यतानुसार काम नहीं मिलता है और उन्हें कार्य की तुलना में कम वेतन दिया जाता है। किन्तु

समाजवादी व्यवस्था में प्रत्येक – व्यक्ति के लिए योग्यतानुसार कार्य दिया जाएगा, सर्वहारा वर्ग की तानाशाही द्वारा पूंजीवाद के नियम बदल दिए जाएंगे और समाजवादी समाज में रोजगार के नियमों की स्थापना की जाएगी अर्थात् योग्यता के अनुसार सभी को रोजगार प्रदान किया जाएगा।

5. **शोषण का अन्त होगा (There will be no Exploitation)** – मार्क्स का कहना है कि पूंजीवादी व्यवस्था जैसा श्रमिकों का शोषण समाजवादी व्यवस्था में नहीं होगा। श्रमिक वर्ग की तानाशाही स्थापित होते ही शोषण के सभी साधन समाप्त कर दिए जाएंगे। समाज में श्रम का महत्त्व बढ़ेगा। जो श्रम नहीं करेगा, उसे भोजन प्राप्त नहीं होगा। श्रमिक वर्ग की तानाशाही स्थापित होते ही मानव के शोषण की प्रवृति समाप्त हो जाएगी और समाज में अन्त में एक ही वर्ग (श्रमिक वर्ग) रह जाएगा। यह अवस्था समाजवादी समाज की होगी जिसमें शोषक वर्ग और उत्तराधिकार के नियम दोनों का अन्त हो जाएगा।

6. **लोकतान्त्रिक व्यवस्था होगी (Democratic Set -up) –** मार्क्स के अनुसार सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र की स्थापना होते ही पूंजीवाद का सफाया जो जाएगा और समाज में एक नई व्यवस्था का जन्म होगा। पूंजीवाद के लिए तो यह व्यवस्था अधिनायकवादी होगी, किन्तु श्रमिकों के लिए यह लोकतानत्रिक व्यवस्था होगी। पूंजीवाद के अन्त के बाद श्रमिक वर्ग की तानाशाही के अन्तर्गत श्रमिक वर्ग अपने हितों के लिए लोकतांत्रिक ढंग से कार्य करेगा। सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार की प्रणाली द्वारा श्रमिकों के प्रतिनिधि चुने जाएंगे और शासन का संचालन श्रमिक वर्ग ही करेगा। शासन संचालन में सबकी इच्छा का ध्यान रखा जाएगा। इसमें किसी एक दल के पास सत्ता का केन्द्रीकरण नहीं होगा।

इस तरह श्रमिक वर्ग की तानाशाही द्वारा समाजवादी समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होगा। मार्क्स ने कहा है कि सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतन्त्र एक संक्रमणशील (अस्थायी) व्यवस्था होगी। सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की देख –रेख में ही समाजवादी समाज में एक ऐसा गुणात्मक विकास होगा कि यह समाज क्रमशः साम्यवादी समाज में बदल जाएगा अर्थात् वर्ग विहीन तथा राज्य विहीन समाज में

बदल जाएगा। मार्क्स के अनुसार – "सर्वहारा क्रान्ति के बाद मजदूर वर्ग की तानाशाही की स्थापना होगी। जिसके अधीन समाजवाद निखर कर साम्यवादी समाज में विकसित हो जाएगा।"

7.12 वर्ग–विहीन-राज्य–विहीन समाज (Classless-Stateless Society)

मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध रचना में साम्यवादी समाज के बारे में विस्तार से लिखा है। उसके अनुसार सर्वहारा वर्ग की तानाशाही एक अस्थायी व्यवस्था है। मुख्य व्यवस्था तो साम्यवादी समाज है जो वर्ग – विहीन तथा राज्य – विहीन है। यह व्यवस्था द्वन्द्ववादी प्रक्रिया का स्वाभाविक परिणाम है जो वर्ग – संघर्ष की समाप्ति के बाद राज्य – विहीन तथा वर्ग विहीन समाज की स्थापना करता है। यह समाज की एक आदर्श व्यवस्था है। मार्क्स और एंजील्स की मान्यता थी कि पहले वर्तमान पूंजीवादी राज्य सर्वहारा वर्ग द्वारा क्रान्ति करके नष्ट कर दिया जाएगा और बाद में सर्वहारा राज्य का वर्ग उन्मूलन के बाद स्वतः विलोप हो जाएगा। राज्य के विलोप की यह प्रक्रिया एक लम्बी और क्रमिक प्रक्रिया है जो तभी पूर्णताः प्राप्त करती है जबकि समाज स्वशासन के लिए पूर्णता तैयार हो जाता है। दूसरे शब्दों में जब समाजवाद का निर्माण पूर्ण हो जाता है और सर्वहारा अधिनायकत्व सम्पूर्ण जनता के राज्य में परिणत हो जाता है। एंजिल्स ने इस ओर संकेत करते हुए कहा है कि अन्त में जब राज्य पूरे समाज का सच्चा प्रतिनिधि बन जाता है तब वह अपने आपको अनावश्यक बना देता है। जब ऐसा कोई वर्ग नहीं रह जाता है जिसे पराधीन बनाकर रखने की आवश्यकता हो, जब वर्ग – शासन और उत्पादन की वर्तमान व्यवस्था पर आधारित व्यक्तिगत जीवन संग्राम और उनसे पैदा होने वाली टक्करें और ज्यादतियां समाप्त हो जाती है, तब ऐसी कोई चीज नहीं बचती जिसको दबाकर रखना जरूरी हो और जब तक विशेष दमनकारी शक्ति की या राज्य की कोई आवश्यकता नहीं रहती। वह पहला कार्य जिसके द्वारा राज्य अपने आपको सचमुच पूरे समाज का प्रतिनिधि बना देता है अर्थात् समाज के नाम पर उत्पादन के साधनों को अपने अधिकार में कर लेना – यह कार्य ही राज्य के रूप में उसका आखिरी स्वतन्त्र कार्य होता है। एक क्षेत्र के बाद दूसरे क्षेत्र में, सामाजिक सम्बन्धों में राज्य का अनावश्यक हस्तक्षेप

बनता जाता है और फिर अपने आप समाप्त हो जाता है। व्यक्तियों के शासन का स्थान, वस्तुओं का प्रबन्ध तथा उत्पादन की प्रक्रियाओं का संचालन ग्रहण कर लेता है। राज्य को रद्द नहीं किया जाता, वह अपने आप मर जाता है। समाजवादी समाज के बारे में आगे मार्क्स ने कहा है – "नए साम्यवादी समाज की प्रमुख विशेषता पूर्णहीनता एवं राज्यहीनता होगी। इसमें समाज एक परिवार की भांति होगा और प्रत्येक व्यक्ति योग्यतानुसार कार्य करेगा तथा आवश्यकतानुसार उपभोग करेगा। इस समाज में राज्य की किसी भी रूप में आवश्यकता नहीं रहेगी।"

वर्ग विहीन एवं राज्य विहीन समाज के बारें में मार्क्स का कहना है कि, "जिस समाज में उत्पादकों के स्वैच्छिक आधार पर नए ढंग से उत्पादन का संगठन स्थापित कर लिया जाता है, वहां सम्पूर्ण राज्य मशीनरी को चरखे और कांसे के कुलहड़े के साथ पुरात्व संग्राहालय में, जहां कि उसका उपयुक्त स्थान है, रख दिया जाता है।" लेनिन ने भी मार्क्स के मत का समर्थन करते हुए कहा है – "राज्य का उसी समय पूर्णतया विलोप हो जाएगा जब समाज इस नियम को अपना लेगा 'हर एक से उसकी क्षमता के अनुसार और हर एक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' अर्थात् उस समय जबकि सामाजिक आदान – प्रदान के मौलिक नियमों का पालन करने में इतने अभ्यस्त हो जाएंगे और जब उनका श्रम इतना उत्पादक हो जाएगा कि वे स्वेच्छापूर्वक अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करने लगेंगे।

इस तरह उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समाजवादी समाज का निर्माण राज्य के विलुप्त होने की प्रक्रिया में ही ऐसे समाज का निर्माण सम्भव है, जिसके झण्डे पर मार्क्स के अनुसार यह लिखा होगा – 'हर एक से अपनी क्षमता के अनुसार और हर एक को अपनी आवश्यकता के अनुसार' इसके साथ ही इस तरह के समाज के निर्माण के लिए अनिवार्य शर्त, सम्पूर्ण विश्व में समाजवाद की विजय एवं उसका सृदृढ़ीकरण है। अगर वर्तमान समय की तरह विश्व के कुछ राज्यों में समाजवाद प्रभावपूर्ण होता है और बाकी में पूंजीवादी एक सशस्त्र खतरे के रूप में बना रहता है, तो ऐसे हालात में सुरक्षा की दृष्टि से समाजवादी राज्य असीमित काल तक राज्य की उपस्थिति बनाए रखने के लिए

विवश होंगे। परिणामस्वरूप वे चाहते हुए भी राज्य के विलोपीकरण और पूर्ण समाज के युग में प्रवेश करने की दिशा में प्रगति नहीं कर सकेंगे। लेकिन मार्क्स के मतानुसार यह स्थिति अधिक समय तक जारी नहीं रह सकती। सामाजिक विकास के नियमों के अनुसार धीरे – धीरे विश्व के समस्त पूंजीवादी राज्य समाजवादी राज्यों में बदल जाएंगे और इस तरह अन्ततोगत्वा राज्य के विलोपीकरण का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा तथा विश्व मानवता प्रतिघात और भीतरी घात (अन्तर्द्वन्द्व) के भय से मुक्त होकर साम्यवादी समाज के युग में प्रवेश करेगी अर्थात् तब समाज से शोषण व भय का नाश होगा और विश्व समाज नई दिशा की ओर उन्मुख होकर मानवता की लम्बी त्रासदी का उन्मूलन कर देगा।

7.13 कार्ल मार्क्स का योगदान (Contribution of Karl Marx)

वैज्ञानिक समाजवाद के जनक कार्ल मार्क्स का राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में विशेष महत्त्व है, यद्यपि मार्क्स के सिद्धान्तों की अनेक आधारों पर आलोचना भी हुई है, लेकिन इससे मार्क्स का महत्त्व कम नहीं हो जाता । प्रो० वेपर ने उसे 19वीं सदी का सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति माना है। मैकसी ने भी मार्क्स के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि अनेक आलोचनाओं के बावजूद भी मार्क्स आधुनिक युग के राजनीतिक और आर्थिक चिन्तन में एक शक्तिशाली तत्व बना हुआ है। लुईश वाशरमैन ने कहा है कि समाजवाद ने उससे एक दर्शन और दिशा प्राप्त की है। इस आधार पर स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि मार्क्स जैसा महान साम्यवादी सन्त आज तक कोई अन्य नहीं हुआ है। आधुनिक मार्क्सवादी विचाराधारा भी इस सन्त की ऋणी है। मार्क्स की प्रमुख देन निम्नलिखित हैं –

1. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Approach)** – मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। उसके सिद्धान्त आधुनिक राजनीतिक चिन्तन में अपने गुण के कारण काफी लोकप्रिय है। उसने समाजवादी चिन्तन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करके जो क्रमबद्धता का गुण उसमें भरा है, वह उसकी महान देन है। उसने अपने राजनीतिक चिन्तन को इतिहास से जोड़कर एक तर्कसंगत, वैज्ञानिक और नई दिशा प्रदान की है। उसने

वैज्ञानिकता और तार्किकता में समन्वय स्थापित किया है। मैकसी ने उसके वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बारे में लिखा है – "समाजवाद को वैज्ञानिक रूप देना मार्क्स के माने हुए सिद्धान्तों में से था उसने समाजवाद को केवल वैज्ञानिक आधार ही प्रदान नहीं किया बल्कि उसे विशाल शक्ति भी प्रदान की।"समाजवाद को वैज्ञानिक रूप देना मार्क्स के माने हुए सिद्धान्तों में से था उसने समाजवाद को केवल वैज्ञानिक आधार ही प्रदान नहीं किया बल्कि उसे विशाल शक्ति भी प्रदान की।"

2. **सामाजिक जीवन का यथार्थवादी चित्रण (Realistic Desription of Social Life)** – मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के आधार पर सामाजिक जीवन का यथार्थवादी चित्रण किया है। इसने सामाजिक संस्थाओं के संचालन के आर्थिक कारकों को वास्तविक शक्ति प्रदान कर समाजशास्त्रों को सशक्त बना दिया। उसने वैधानिक और राजनीतिक संस्थाओं तथा आर्थिक प्रणाली में आपसी सम्बन्धों की प्रगाढ़ता सिद्ध की और इस तरह स्वयं को प्रभावशाली सामाजिक दार्शनिकों की अग्रिम पंक्ति में प्रतिष्ठित किया। वेपर ने लिखा है कि इस देन के कारण मार्क्स को एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक समझना चाहिए।

3. **धर्म और विज्ञान का संयोग (Combination of Science and Religion)**– प्रसिद्ध विद्वान वेपर ने कहा है – "मार्क्स ने धर्म और विज्ञान के संयोग से युग की महान सेवा की है।" पुरातन के प्रेमियों के लिए उसके पास धर्म की तथा नवीनता के पुजारियों के लिए उसके पास विज्ञान की पिटारी है तथा समाजवादी प्रकाश की किरण है।

4. **समाजवादी दर्शन का यथार्थ विश्लेषण (Realistic Anslysis of Social Philosophy)** – मार्क्स से पूर्व भी काल्पनिक समाजवादियों – चार्ल्स, फोरियर, ओविन, प्रौंधा आदि ने समाजवादी विचारधारा पर अपने विचार प्रकट किए थे। लेकिन मार्क्स ही ऐसा प्रथम विचारक था जिसने समाजवाद के यथार्थ रूप का चित्रण करके उसे वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

5. **साम्यवादी विचार (Propounder of Communist Philosophy)** – दर्शन का प्रतिपादन – मार्क्स को ही साम्यवादी विचार – दर्शन का प्रतिपादक माना

जाता है। उसके द्वारा प्रतिपाति सिद्धान्तों के ऊपर ही आधुनिक साम्यवाद की ईमारत खड़ी हुई है। लेनिन, स्टालिन और माओ जैसे महान साम्यवादी विचारक मार्क्सवाद से ओत – प्रोत रहे हैं। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित कृतियां 'साम्यवादी घोषण पत्र' और 'दास कैपिटल' साम्यवादियों की 'बाइबल' कही जाती है और मार्क्स को साम्यवादी सन्त कहा जाता है।

6. **पूंजीवादी के दोषों को उजागर करना (Brings to light evils of Capitalism) –** मार्क्स की ऐतिहासिक अमरता उसके उस अथक संघर्ष में छिपी हुई है, जो उसने पूंजीवाद के शोषण और अन्याय के विरूद्ध किया था। मार्क्स ने इस संघर्ष में करोंड़ों, दलितों, पीड़ितों और शोषितों की भावनाओं को उजागर किया है। उसने अपने सिद्धान्तों के माध्यम से शोषितों में एक ऐसी भावना को पैदा किया जो पूंजीवाद के विरूद्ध संघर्ष कर सकती थी। मार्क्स का यह अटूट विश्वास था कि पूंजीवाद के विरूद्ध इन संघर्ष में सर्वहारा वर्ग की विजय होगी तथा वर्ग – विहीन समाज का स्वप्न साकार होगा, लेनिन ने कहा है – "मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन ने ही सर्वहारा वर्ग को उस आत्मिक दासता से मुक्ति पाने का मार्ग दिखाया, जिसने सभी उत्पीड़ित वर्ग अब तक सिसकते हुए दिन काट रहे थे।" लेनिन का इशारा स्पष्ट तौर पर पूंजीवादी व्यवस्था के शोषित रूप की तरफ ही है।

7. **श्रमिक–वर्ग में नई आशा, विश्वास तथा चेतना का संचार करना (To Enthuse new hopes, confidence and consciousness in labour class) –** मार्क्स ने कहा है कि पूंजीवाद का पतन अनिवार्य है तथा उसके खिलाफ संघर्ष में श्रमिकों की ही विजय होगी। इससे श्रमिकों को पूंजीवाद के खिलाफ संघर्ष करने की प्रबल प्रेरणा व शक्ति प्राप्त हुई। उसके वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त ने श्रमिकों में नई आशा, विश्वास, चेतना, एकता व शक्ति प्राप्त हुई। उसके वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त ने श्रमिकों में नई आशा, विश्वास, चेतना, एकता व शक्ति की जो भावना भरी और श्रमिक आन्दोलनों को जन्म दिया।

8. **समाजवादी आन्दोलन का प्रेणता (Propunder of Socialist Movement) –** मार्क्स ने श्रमिक वर्ग में नई चेतना पैदा करके समाजवादी आन्दोलन का रास्ता तैयार किया। उसने समाजवादी आन्दोलनों की सफलता के लिए वही कार्य किया जो मैकियावली ने राज्य के सिद्धान्त के लिए किया था। बर्लिन ने लिखा है – "19वीं सदी में कितने सामाजिक आलोचक तथा क्रान्तिकारी हुए जो किसी भी रूप में कम मौलिक नहीं थे, लेकिन कोई भी ऐसा नहीं था जो मार्क्स जैसा दृढ़ – निश्चयी हो, अपने जीवन के प्रत्येक कार्य को तत्कालिक व्यावहारिक बनाने के लिए इतना तल्लीन हो जिसके लिए बलिदान से अधिक पवित्र और कुछ नहीं था।"

9. **साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरूद्ध प्रबल स्वर (Stren voice against imperialism and colonialism) –** मार्क्स को समाजवादी क्रान्तियों का अग्रदूत माना जाता है। उसके विचारों से प्ररेणा पाकर एशिया अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी ताकतों के विरूद्ध व्यापक जन आन्दोलन उठ खड़े हुए। 1917 की रूसी क्रान्ति की सफलता से प्रेरणा पाकर एशिया व अफ्रीका के देश भी अपनी स्वतन्ता प्राप्ति के लिए संगठित प्रयास करने लगे और उन्होंने भी उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रियाएं व्यक्त करनी शुरू कर दी। इस तरह मार्क्स ने मानवता की बहुत सेवा की है।

10. **विश्व में साम्यवादी राष्ट्रों का आविर्भाव (Emergence Communist Countries in the World) –** मार्क्स ने विश्व के सामने ऐसे सिद्धान्त पेश किए, जिनकी व्यावहारिक परिणिति साम्वादी राष्ट्रों के आविर्भाव के रूप में हुई। 1917 की रूसी क्रान्ति के बाद रूस में साम्यवाद की स्थापना तथा 1949 में चीन में माओं के नेतृत्व में साम्वादी शासन की स्थापना के पीछे मार्क्सवाद का ही प्रभाव परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त हंगरी, पोलैण्ड, चकोस्लोवाकिया, यूगोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी, बुलगारिया, अल्बानिया आदि देशों में भी साम्यवादी सरकारें स्थापित होना मार्क्सवाद के प्रभाव को दर्शाता है। यद्यपि वर्तमान में अनेक देशों से साम्यवाद का पतन हो चुका है। लेकिन कुछ देशों

में साम्यवादी विचारधारा आज भी जिन्दा है। चीन में इसका प्रयोग आज भी हो रहा है। इससे मार्क्सवाद की लोकप्रियता का पता चलता है।

11. **मार्क्सवाद विश्व के करोड़ों लोगों के लिए आशा की किरण है (Marxism is a ray of hope for Millions of People)** – आज सैकड़ों वर्ष बाद भी विश्व में मार्क्स के करोड़ों अनुयायी है। आज मार्क्सवादी विचारधारा विश्व के करोड़ों दलितों व शोषितों के लिए आशा की नई किरण है। मार्क्सवाद उन्हें अपने ऊपर हो रहे अन्याय व शोषण के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा दे रहा है।
12. **एक नई समस्या और विचारधारा का प्रतीक (Symbol of New Civilization and Thought)** – मार्क्सवादी विचारधारा ने विश्व के सामने नई सभ्यता और विचारधारा का विकास किया। साम्यवादी सभ्यता, पाश्चात्य सभ्यता से भिन्न है। यह एक ऐसी विचाराधारा के रूप में उभरकर हमारे सामने आयी है जो शोषण – रहित समाज की अवधारणा (समाजवादी – समाज) के रूप में प्रसिद्ध है।

7.14 निष्कर्ष (Conclusion)–

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मार्क्सवाद एक प्रगतिशील दर्शन है जिसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक अन्याय को जड़ से समाप्त करना है। प्रो० ने कहा है – "कथनी के स्थान पर करनी पर बल देने वाली विचारधारा होने के कारण मार्क्सवाद निश्चय ही हमारे समय की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सुधारवादी विचारधारा है।" मार्क्सवादी विचारधारा के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शुम्पीटन ने कहा है – "मार्क्सवाद एक धर्म है और मार्क्स इसका पैगम्बर है।" मार्क्स के सिद्धान्तों को 19वीं तथा 20वीं सदी में जितनी लोकप्रियता मिली उतनी अन्य किसी विचारधारा को नहीं मिली हैं आज विश्व में करोड़ों निर्धन, शोषित व पूंजीवाद से पीड़ित लोग मार्क्स को अपना आराध्य देव मानते हैं और शोषण से छुटकारा पाने के लिए प्रयासरत् है। आज जिन देशों में साम्यवादी सरकारें हैं, वहां श्रमिकों के कल्याण की तरफ पूरा ध्यान दिया जा रहा है। आज जहां पर भी और जिन देशों में साम्यवादी दल सक्रिय है, वहां पर वहां की सरकारें किसी न किसी रूप में कम

या अधिक साम्यवादी नीतियां अवश्य अपना रही हैं। इस दृष्टि से मार्क्सवाद ही आधुनिक युग की लोकप्रिय दर्शन साबित हो रहा है। यद्यपि आज अनेक देशों से साम्यवाद का पतन हो चुका है या होने की राह पर हैं, लेकिन फिर भी उन समाजों में वर्ग – संघर्ष के रूप में मार्क्सवाद आज भी किसी न किसी तरह जिंदा है। जब तक देशाों में शोषण, बेरोजगारी, निर्धरता आदि समस्याएं मौजूद हैं तब तक मार्क्सवाद की उपयोगिता, उसका आर्कषण एवं औचित्य भी किसी न किसी रूप में अवश्य ही विद्यमान रहेगा। वेवर का यह कथन सत्य है कि मार्क्स जैसा राजनीतिक चिन्तन अभी तक पैदा नहीं हुआ है। सारे संसार के साम्यवादियों में वह एक महान चिन्तक था। वह एक ऐसा साम्यवादी सन्त था जिसने शोषक वर्ग के लिए अथक कार्य किया और पूंजीवादी समाज के मन में शोषक वर्ग के प्रति चिन्ता की लहर पैदा की। अतः राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में मार्क्स की देन अमूल्य व शाश्वत् है।

7.15 शब्दावली (Keywords)–

अपरिहार्य	–	अनिवार्य
सर्वहारा वर्ग	–	श्रमिक वर्ग
बुर्जुआ वर्ग	–	पूंजीपति वर्ग
अधिपत्य	–	तानाशाही, कब्जा, नियंत्रण

7.16 स्वमूल्याकंन (Self-Assessment)

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) मार्क्स के विचारों पर किन–किन विचारकों तथा परिस्थितियों ने प्रभाव डाला?

(2) मार्क्स ने अतिरिक्त पूंजी पर क्या विचार दिए हैं?

(3) वर्ग–संघर्ष के सिद्धान्त पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

(4) मार्क्स के धर्म सम्बन्धी विचारों पर एक नोट लिखें।

दीर्घ उत्रात्मक प्रश्न – (Long Answer Type Question)

(1) कार्ल मार्क्स के राज्य सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

(2) मार्क्स के इतिहास की भौतिकतावादी व्याख्या पर नोट लिखें।

(3) कार्ल मार्क्स द्वारा दिए गए वर्ग–संघर्ष के सिद्धान्त की आलोचनतात्मक व्याख्या करें।

(4) मार्क्स का द्वन्दात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त क्या है?

(5) कार्ल मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की समीक्षा कीजिए।

7.17सन्दर्भ सूची–

1. प्रभुदत्त शर्मा, राजनीतिक विचारों का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1967.
2. बी.एल.फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2018.
3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग–प्राचीन व मध्यकालीन), जे.नाथ एण्ड कंपनी, मेरठ, 2008.
4. सेबाइन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थ्योरी, न्यूयार्क, 1973
5. पुखराज जैन, राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त, साहित्य भवन, आगरा, 1988.
6. रघुवीर सिंह, मध्यकालीन विश्व का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली
7. ब्रायन आर. नेल्सन, वेस्टर्न पॉलिटिकल थॉट, वेवलैंड प्रकाशन, 1996.
8. डी. बॉशर व पी. कैली, पॉलिटिकल थिंकरसः फ्रॉम सॉकरेटिज टू द प्रेजेंट, ऑक्सफोर्ड, 2009.
9. जे.कॉलमैन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थॉटः फ्रॉम एंशियट ग्रीस टू अर्ली प्रिस्टियनीटी, ऑक्सफोर्ड, 2000.
10. सी.बी.मैकफर्सन, द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ पसैसिव इंडिवियुलिज्मः हॉब्स टू लॉक, 1962.
11. ली. स्ट्रॉस, हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल फिलॉस्फी, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रैस, 1987.